दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
Directorate of Distance Education
जम्मू विश्वविद्यालय
UNIVERSITY OF JAMMU
जम्मू
JAMMU

पाठ्य सामग्री
STUDY MATERIAL
कला स्नातक–सत्र – III

B.A. Semester-III
Session : 2021 onwards

विषय : हिन्दी	आलेख संख्या 1 – 15
Subject : Hindi	**Lesson No. : 1 - 15**
Course Code : HI-301	पाठ्यक्रम संख्या : **HI-301**

Dr. Hina S. Abrol
Course Co-ordinator

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू –180006 के पास सुरक्षित है।

---

http:/www.distanceeducationju.in
Printed and published on behalf of the Directorate of Distance Education,
University of Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu

B.A. HINDI

Course Contributors

- Dr. Balwan Singh — L. No. 1 to 3
  Associate Professor, GDC, R.S. Pura, Jammu
- Dr. Raj Jamwal — L.No. 4 to 6
  Associate Professor, GCW, Parade, Jammu
- Dr. Jyoti Rani — L. No. 7 to 9
  Assistant Professor, GDC, Hiranagar
- Dr. Vandna Sharma — L. No. 13 to 15
  Assistant Professor
  Central University of Jammu
- Dr. Bhagwati Devi — L.No. 10 to 12
  Assistant Professor
  Cluster University

Review, Proof Reading and Content Editing

- Dr. Pooja Sharma
  Assistant Professor, D.D.E., University of Jammu, Jammu

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu, 2022

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, Universityof Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed by :- Classic Printers / 2022 / 500

SYLLABUS OF B.A. HINDI (हिन्दी)

Semester–3rd

Course Code : H1-301 | **Total Marks : 100**
Credit : 06 | **Sessional Assessment : 20**
Time : 3 hrs. | **Semester Examination : 80**

Examination to be held in Dec. 2021, 2022, 2023

Title—गद्य विधाएं एवं हिन्दी भाषा

भाग (क) गद्य विधाएं

निर्धारित पुस्तक–गद्य फुलवारी–सम्पादक मंडल, डॉ. शहाबुद्दीन शेख एवं अन्य–प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।

इकाई–एक : रेखाचित्र एं संस्मरण (सुभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी)

1. सप्रसंग व्याख्या
2. पठित पाठ का प्रतिपाद्य/उद्देश्य
3. केन्द्रीय पात्रों का परिचय/व्यक्तित्व

इकाई–दो : व्यंग्य एवं निबन्ध (सदाचार का तावीज़, एक बड़े अस्पताल के बार में, मैं धोबी हूँ तथा गप-शप)

1. सप्रसंग व्याख्या
2. निर्धारित लेखों में व्यंग्य योजना
3. निबन्धों की शैली

इकाई–तीन : एकांकी एवं यात्रा वृतांत (आवाज़ का नीलाम एवं जमनोत्री की यात्रा)

1. सप्रसंग व्याख्या
2. पठित पाठों की समीक्षा
3. पठित पाठों का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

भाग (ख) हिन्दी भाषा

इकाई–चार :

1. हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास
2. हिन्दी की बोलियों का सामान्य परिचय
3. अलंकार–उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति

इकाई–पाँच :

1. लिपियों का उद्‌भव एवं विकास
2. देवनागरी लिपि : नामकरण एवं विकास
3. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

प्रश्न पत्र का प्रारूप एं अंक विभाजन

1. प्रत्येक इकाई में एक–एक दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न पूछा जाएगा। जिनमें से केवल दो प्रश्नों के उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 500–600 शब्दों में देना होगा। 2×15=30
2. किन्हीं दो इकाइयों में से शत प्रतिशत विकल्प के साथ दो सप्रसंग व्याख्या पूछी जाएगी। अन्य तीन इकाइयों में से एक–एक लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न (कुल तीन) पूछें जाएंगे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 250–300 शब्दों में देना होगा। इसमें कोई विकल्प नहीं दिया जाएगा। 5×7=35
3. प्रत्येक इकाई में से एक–एक लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न पूछना अनिवार्य है। कुल पाँच प्रश्न पूछे जाऐंगे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 70–80 शब्दों में देना होगा। इसमें कोई विकल्प नहीं दिया जाएगा। 5×3=15

कुल अंक : 80

संस्तुत पुस्तकें

1. हिन्दी रेखाचित्र – हरवंश लाल शर्मा
2. हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धान्त और विकास – मक्खन लाल शर्मा
3. हिन्दी का संस्मरण साहित्य – कमलेश्वर शरण सहाय
4. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या – रामस्वरूप चतुर्वेदी
5. अज्ञेय – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
6. रेखा और रंग – डॉ. विनय मोहन शर्मा
7. रेखाचित्र स्वरूप और समीक्षा – डॉ. विश्वनाथ प्रताप सिंह
8. विचार और विश्लेषण – डॉ. नगेन्द्र
9. हिन्दी भाषा का इतिहास – भोलानाथ तिवारी
10. हिन्दी एवं मौलिक व्याकरण – रमाकान्त अग्निहोत्री
11. मानक हिन्दी व्याकरण – डॉ. शशि शेखर तिवारी

विषय सूची

आलेख सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	सुभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी की सप्रसंग व्याख्या	
2.	सुभान खाँ, भाभी तथा महात्मा गाँधी का प्रतिपाद्य/उद्देश्य	
3.	सुभान खाँ, भाभी तथा महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व/चरित्र–चित्रण	
4.	सदाचार का तावीज़, एक बड़े अस्पताल के बार में, मैं धोबी हूँ तथा गप–शप की सप्रसंग व्याख्या	
5.	निर्धारित लेखों में व्यंग्य योजना	
6.	निर्धारित व्यंग्य एवं निबन्धों की शैली	
7.	'आवाज़ का नीलाम' एकांकी और 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत की सप्रसंग व्याख्याएँ	
8.	'आवाज़ का नीलाम' एकांकी एवं 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत की समीक्षा	
9.	'आवाज़ का नीलाम' एकांकी एवं 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतान्त का उद्देश्य/प्रतिपाद्य	
10.	हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास	
11.	हिन्दी का क्षेत्र और उसकी प्रमुख बोलियां	
12.	अलंकार	
13.	लिपियों का उद्‌भव और विकास	
14.	देवनागरी लिपि : नामकरण एवं विकास	
15.	देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता	

B.A. HINDI **UNIT-1** **Lesson No. 1**
COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

सुभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी की सप्रसंग व्याख्या

1.0 रूपरेखा
1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 सप्रसंग व्याख्या
  1.3.1 सुभान खाँ
  1.3.2 भाभी
  1.3.3 महात्मा गाँधी
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
1.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख में पाठ्यक्रम में संकलित रेखाचित्रों– सुंभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी संस्मरण की व्याख्या की जाएगी। इसे पढ़ने के बाद छात्र–

1. रेखाचित्र और संस्मरण के महत्वपूग्र अंशों की सप्रसंग व्याख्या करने में सक्षम होंगे।
2. हिंदी के कुछ महत्वपूर्ण रेखाचित्र–संस्मरणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. सांप्रदायिक सद्भाव और कर्म की महत्ता को समझ सकेंगे।

4. भारतीय समाज में बाल–विधवाओं की दयनीय स्थिति से अवगत होंगे।

5. भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गाँधी के योगदान को समझ सकेंगे।

6. रेखाचित्रों और संस्मरण विधाओं की भाषा शैली को समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

संसार की समस्त भाषाओं में पद्य–रचना पहले हुई थी। गद्य–रचना इसके बाद की मानी जाती है। गद्य विधाएं साहित्य का विकसित रूप हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लल्लू लाल, सदल मिश्र, इंशा अल्ला खाँ और सदासुख लाल ने गद्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतेन्दु युग में सामान्य जीवन से संबंधित विषयों पर गद्य लिखा जाने लगा। नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, व्यंग्य, रेखाचित्र और संस्मरण आदि विधाओं के कारण गद्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक बन गया। गद्य की प्रत्येक विधा में कुछ न कुछ अंतर अवश्य रहता है। प्रत्येक विधा अलग प्रकार के लेखन की माँग करती है। प्रत्येक विधा को व्याख्यायित करने का तरीका भी अलग–अलग होता है। इस आलेख में हम गद्य की दो अत्यंत प्रसिद्ध विधाओं–रेखाचित्र और संस्मरण के अंतर्गत रामवृक्ष बेनीपुरी, महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा द्वारा रचित सुभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी की सप्रसंग व्याख्या करेंगे।

1.3 सप्रसंग व्याख्या

1.3.1 सुभान खाँ– रामवृक्ष बेनीपुरी

1.3.1.1 सुभान खाँ एक अच्छे राजमिस्त्री समझे जाते हैं। जब–जब घर की दीवारों पर कुछ मरम्मत की जरूरत होती है, उन्हें बुला लिया जाता है। आते हैं, पाँच–सात रोज़ यही रहते हैं, काम खत्म कर चले जाते हैं।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'रामवृक्ष बेनीपुरी' द्वारा लिखित रेखाचित्र 'सुभान खाँ' में से लिया गया है, जिसमें सुभान खाँ को एक अच्छे राज मिस्त्री के रूप में चित्रित किया गया है।

व्याख्या :– इन पंक्तियों में बेनीपुरी जी ने बताया है कि सुभान खाँ अपने इलाके के बहुत बढ़िया राज मिस्त्री माने जाते थे। लेखक अपने मामा के घर में ही रहता है और जब भी इनके मामा को अपने घर की मरम्मत इत्यादि करवानी होती थी तो वे सुभान खाँ को ही बुलाते थे। सुभान खाँ के साथ इनका संबंध अत्यंत घनिष्ट है। जब तक इनके घर की मरम्मत का काम चलता रहता तब तक सुभान खाँ इनके घर में ही ठहरते थे। काम समाप्त होने तक वह अपने घर न जाकर इनके घर में ही रुके रहते थे। काम समाप्त होने पर ही सुभान खाँ अपने घर जाते थे।

विशेष :– लेखक ने सुभान खाँ को एक अच्छे राज–मिस्त्री बताने के साथ–साथ हिंदू मुस्लिम भाईचारे को भी रेखांकित किया है। तत्कालीन समाज में सामप्रदायिक सद्भाव को दर्शाया गया है। सुभान खाँ मुसलमान होते हुए भी हिंदू घरों में सम्मानपूर्वक ठहरते हैं।

1.3.1.2 ईद–बकरीद को न सुभान दादा हमें भूल सकते थे, न होली–दीवाली को हम उन्हें! होली के दिन नानी अपने हाथों से पूए, खीर और गोश्त परोसकर सुभान दादा को खिलातीं। और, तब मैं ही अपने हाथों से अबीर लेकर उनकी दाढ़ी में मलता।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित रेखाचित्र 'सुभान खाँ' में से लिया गया है, जिसके लेखक 'रामवृक्ष बेनीपुरी' हैं।

व्याख्या :– लेखक ने तत्कालीन समाज में हिंदु–मुस्लिम प्रेम और भाईचारे का वर्णन किया है। सुभान दादा ईद और बकरीद पर लेखक के परिवार को हमेशा याद रखते थे और कुछ न कुछ भेंट इत्यादि लाया करते थे। लेखक का परिवार भी होली और दीवाली पर सुभान खाँ को अपनी खुशियों में अवश्य शामिल करता था। लेखक को याद आता है कि इनकी नानी होली के अवसर पर विभिन्न पकवान के साथ–साथ गोश्त पकाकर सुभान खाँ को खिलाया करती थीं। सब एक–दूसरे के त्योहारों में प्रसन्नतापूर्वक शामिल हुआ करते थे। लेखक स्वयं होली के अवसर पर सुभान खाँ को रंग लगाकर उनकी दाढ़ी को रंगीन कर दिया करते थे।

विशेष :– साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना पर बल दिया गया है।

1.3.1.3 अंग्रेजी स्कूल के वातावरण में अजीब अस्वाभाविकता हर बात में ला ही थी। पर, हाँ शायद एक ही चीज़ अब भी पवित्र रह गई थी। आँखों ने आँसू की छलकन से अपने को पवित्र कर चुपचाप ही उनके चरणों में श्रद्धांजलि चढ़ा दी।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित रेखाचित्र 'सुभान खाँ' में से लिया गया है, जिसके लेखक 'रामवृक्ष बेनीपुरी' हैं।

व्याख्या :– 'सुभान खाँ' ने लेखक को अरब से छुहारे लाकर दिए तो लेखक अत्यंत भाव–विभोर हो उठा। लेखक के मन में आया कि काश वह एक बार फिर से बच्चा हो जाता। लेखक पुनः बच्चा बनकर सुभान दादा से खेलना चाहता था। लेखक को लगा कि अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के कारण उसके व्यक्तित्व में एक अस्वाभाविकता सी आ गई है जिस कारण लेखक ढंग से सुभान खाँ के प्रति धन्यवाद के भाव भी प्रकट नहीं कर सका। लेकिन लेखक को लगता है कि कुछ ऐसा था जो अभी भी उसके अंदर पवित्र था वे थे आँसू। आँसू सच्चे मन की गराइयों से निकलते हैं उन आँसूओं ने छलक कर लेखक की कृतज्ञता और प्रसन्नता को व्यक्त कर दिया था। पवित्र स्नेह के आँसुओं से सुभान खाँ के चरणों को धो दिया था।

विशेष :– लेखक इस बात पर भावुक हो उठा कि सुभान दादा अभी तक छुहारे लाने की लेखक की इच्छा को भूले नहीं थे। मानवीय प्रेम की गरिमा का वर्णन किया गया है।

1.3.1.4 जमाना बदला मैं अब शहरों में ही ज़्यादातर रहता और, शहर आए–दिन हिन्दू–मुस्लिम दंगों के अखाड़े बन जाते थे। हाँ, आए दिन! देखिएगा, एक ही सड़क पर हिन्दू–मुस्लिम चल रहे हैं, एक ही दुकान पर सौदे खरीद रहे हैं, एक ही सवारियों पर जानू–ब–जानू आ–जा रहे हैं, एक ही स्कूल में पढ़ रहे हैं, एक ही दफ्तर

में काम कर रहे हैं, कि अचानक सबके सिर पर शैतान सवार हो गया। हल्ला, भगदड़, मारपीट, खूनखराबी, आग–लगी–सारी खुराफातों की छूट! न घर महफूज़, न शरीर, न इज्ज़त! प्रेम, भाईचारे और सहृदयता के स्थान पर घृणा, विरोध और नृशंस हत्या का उल्लंग नृत्य!

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'रामवृक्ष बेनीपुरी' द्वारा लिखित रेखाचित्र 'सुभान खाँ' में से लिया गया है। इन पंक्तियों में लेखक ने शहरों में होने वाले हिन्दू–मुस्लिम सांप्रदायिक दंगों के कारण मनुष्यता के ह्रास का वर्णन किया है।

व्याख्या :– लेखक के अनुसार सदियों तक हिन्दू–मुसलमान मिलजुल कर रहते आए थे किन्तु समय गुज़रने के साथ–साथ दोनों संप्रदायों में अक्सर ही सांप्रदायिक दंगे भड़क उठते थे। शहरों में यह प्रवृत्ति कुछ ज्यादा ही देखने को मिलती है। लेखक दोनों संप्रदायों में होने वाले दंगों से व्यथित हो उठता है। उसे लगता है कि आम दिनों में दोनों संप्रदायों के लोग शांतिपूर्वक साथ–साथ रहते हैं लेकिन दंगा भड़कने पर यही लोग एक–दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। लेखक के लिए विश्वास कर पाना कठिन हो जाता है कि सड़क, दुकान, सवारी गाड़ियों और स्कूलों में एक–साथ रहने वाले लोग क्यों एक–दूसरे की जान के दुश्मन बन जाते हैं? दंगों में मार–पीट, खून–खराबे का शैतान सवार हो जाता है कि सहृदयता के स्थान पर मारपीट, खूनखराबा और बलात्कार का नंगा नाच होने लगता है।

विशेष :– लेखक ने सांप्रदायिक दंगों से होने वाली तबाही के हृदय–विदारक चित्र खींचे हैं। शहरों की यह बीमारी अब धीरे–धीरे गाँवों तक में फैल गयी है।

1.3.2 भाभी– महादेवी वर्मा

1.3.2.1 छोटे गोल मुख की तुलना में कुछ अधिक चौड़ा लगने वाला, पर दो काली रूखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को एक साथ अपने भीतर बंद कर लेने का प्रयास–सा करती हुई लम्बी बरौनियों वाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई–सी आँखें, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी–सी नाक और मानो अपने ऊपर छपी हुई हँसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहने वाले होठ समय के प्रवाह से फीके भर हो सके हैं, धुल नहीं सके।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'महादेवी वर्मा' द्वारा बाल विधवा पर आधारित रेखाचित्र 'भाभी' में से लिया गया है।

व्याख्या :– लेखिका ने 'भाभी' रेखाचित्र में बाल विधवा भाभी का हृदय विदारक चित्र अंकित किया है। यहाँ पर भाभी की मुखाकृति का चित्रण किया गया है। महादेवी वर्मा कहती हैं कि भाभी का मुख गोल है और ललाट चौड़ा है। लम्बी बरौनियों वाली उनकी आँखें बचपन और प्रौढ़ता का एक साथ आभास करवाती हैं। उनकी आँखें दुःख और वेदना से डबडबाई हुई–सी जान पड़ती हैं। भाभी के छोटे गोल मुख की अपेक्षा नाक और भी छोटी है। उनके हँसते हुए खुले होंठ हैं। लेखिका का कहना है कि इतने वर्ष बीत जाने पर भी भाभी का यह चेहरा उनकी स्मृति में ज्यों का त्यों अंकित है। लेखिका की स्मृतियों में भाभी का चेहरा अभी भी फीका नहीं पड़ा है।

विशेष :– भाभी के चेहरे का वर्णन किया गया है। महादेवी के मन पर अंकित चेहरे का प्रभाव चिरस्थायी है।

1.3.2.2 वह अनाथिनी भी है और अभागी भी। बूढ़े सेठ सबके मना करते–करते भी इसे अपने इकलौते लड़के से ब्याह लाये और उसी साल लड़का बिना बीमारी के ही मर गया। अब सेठजी का इसकी चंचलता के मारे नाक में दम है। न इसे कहीं जाने देते हैं, न किसी को अपने घर आने।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'महादेवी वर्मा' द्वारा बाल विधवा पर आधारित रेखाचित्र 'भाभी' में से लिया गया है।

व्याख्या :– लेखिका के बचपन में उनकी नौकरानी कल्लू की माँ उन्हें स्कूल छोड़ने और लाने का काम करती थी। स्कूल से छोड़ने–लाने के क्रम में ही कल्लू की माँ लेखिका को 'भाभी' के बारे में बताती रही थी। उसने जो कहानी लेखिका को बताई उसके अनुसार भाभी बचपन में ही अनाथ हो गयी थी। जिस लड़के से भाभी की शादी हुई थी, वह साल भर के अंदर ही मर गया। जिससे सभी लोग भाभी को अभागिनी कहा करते थे। उस बेचारी पर तमाम तरह की पाबंदियां लगा दी गई थीं। वह अपने घर से बाहर झाँक तक नहीं सकती थी। कभी–कभार वह विधवा बालिका बाहर झाँक लेती थी तो उसे चरित्रहीन तक कहा जाता था। प्रताड़ना की सीमा तक उस पर अत्याचार किए जाते थे। उसे बाहर जाने नहीं दिया जाता था और न ही उनके घर में किसी को आने दिया जाता था। ऐसे में वह अकेली बालिका घुट–घुटकर जीने को विवश थी।

विशेष :– बाल–वधू की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

1.3.2.3 प्रायः निराहार और निरंतर मिताहार दुर्बल देह से वह कितना परिश्रम करती थी, यह मेरी बालक–बुद्धि से भी छिपा न रहता था। जिस प्रकार उसका, खँडहर–जैसे घर और लंबे–चौड़े आँगन को बैठ–बैठकर बुहारना, आँगन के कुएँ से अपने और ससुर के स्नान के लिए ठहर–ठहर कर पानी खींचना और धोबी के अभाव में, मैले कपड़ों को काठ की मोगरी से पीटते हुए रुक–रुककर साफ करना, मेरी हँसी का साधन बनता था, उसी प्रकार केवल जलती लकड़ियों से प्रकाशित, दिन में भी अँधेरी रसोई की कोठरी के घुटते हुए धुएँ में से रह–रहकर आता हुआ खाँसी का स्वर, कुछ गीली और कुछ सूखी राख से चाँदी–सोने के समान चमकाकर तथा कपड़े से पोंछकर रखते समय शिथिल ऊँगलियों से छूटते हुए बर्तनों की झनझनाहट मेरे मन में एक नया विषाद भर देती थी।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'महादेवी वर्मा' द्वारा बाल विधवा पर आधारित रेखाचित्र 'भाभी' में से लिया गया है।

व्याख्या :– प्रस्तुत गद्यांश में लेखिका ने बाल–विधवा की दुर्दशा का वर्णन किया है। भाभी को अक्सर खाली पेट रखा जाता था। उसे दिन में मात्र एक बार ही खाने को मिलता था। निरंतर खाली पेट रहने या बहुत कम खाने के कारण वह अत्यंत दुर्बल हो गई थी। दुर्बलता के बावजूद उसे निरंतर परिश्रम करना पड़ता था। उसे खण्डहर जैसे घर और बहुत बड़े आँगन को साफ करना पड़ता था। अपने और अपने ससुर के नहाने के लिए कुएँ से पानी खींचना पड़ता था। घर के सारे कपड़े धोने पड़ते थे। अँधेरी कोठरी में धुएँ से बेहाल होकर खाना बनाना पड़ता था। राख से

घिस–घिसकर बर्तनों को माँजना पड़ता था। भाभी के कमज़ोर हाथों से बर्तनों के छूटने पर होने वाली आवाज़ से नन्हीं लेखिका के मन में भाभी के लिए संवेदना उमड़ जाती थी। लेखिका कहती है कि बेशक उस समय वह एक नन्हीं बालिका थी, तो भी भाभी का परिश्रम उनसे छिपा नहीं रह सकता था।

विशेष :– मारवाड़िन भाभी की अत्यंत दारुण दशा का चित्रण किया गया है। विधवाओं पर किए जाने वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है।

1.3.3 महात्मा गाँधी, रामकुमार वर्मा

1.3.3.1 आकाश मंडल के उत्तर में एक नक्षत्र राशि का नाम सप्तऋषि मंडल है और यह सप्तऋषि मंडल जिस नक्षत्र की परिक्रमा करता है, उसका नाम ध्रुव नक्षत्र है। मुझे ऐसा लगा कि इस देश के नहीं, समस्त संसार की राजनीतिक दृष्टियाँ जिसकी परिक्रमा करती हैं, उसका नाम महात्मा गाँधी है।

प्रसंग :– प्रस्तुत पंक्तियां 'गद्य–फुलवारी' में संकलित 'राजकुमार वर्मा' द्वारा लिखित संस्मरण 'महात्मा गाँधी' में से ली गई हैं। प्रस्तुत गद्यांश में उन्होंने महात्मा गाँधी को राजनीतिक क्षेत्र का केन्द्र बताया है।

व्याख्या :– लेखक ने महात्मा गाँधी के महत्व को दर्शाते हुए उन्हें राजनीति का ध्रुवतारा माना है। जिस प्रकार सप्तऋषि ध्रुव नक्षत्र के चारों ओर परिक्रमा करते हैं, ठीक उसी प्रकार महात्मा गाँधी न सिर्फ भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व की राजनीति का केंद्र बने हुए हैं अर्थात् गाँधी ने संपूर्ण विश्व की राजनीतिक दिशा को बदल दिया है। महात्मा गाँधी की सत्य, अहिंसा की विचारधारा ने उनको विश्व राजनीति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक बना दिया है।

विशेष :– महात्मा गाँधी के राजनीतिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

1.3.3.2 महात्मा गाँधी के नाम का ऐसा जादू था कि मैंने गाँव–गाँव जाकर खद्दर बेचा, प्रभातफेरियों में जाकर गीत गाए, चरखा चलाया। महात्मा गाँधी के सान्निध्य में जाकर आर्शीवाद प्राप्त किया और उनसे प्रोत्साहन के शब्द प्राप्त किए।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य–फुलवारी' में संकलित 'रामकुमार वर्मा' द्वारा लिखित संस्मरण 'महात्मा गाँधी' में से लिया गया है। इन पंक्तियों में लेखक पर पड़े गाँधी के प्रभाव को दर्शाया गया है।

व्याख्या :– लेखक ने एक सभा में शौकत अली की ललकार सुनकर स्कूल छोड़ दिया था। लेखक की स्कूल छोड़ने की घोषणा के साथ स्कूल के कुछ और विद्यार्थियों ने भी स्कूल छोड़ दिया था। लेखिक ने स्पष्ट किया है कि महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने गाँव–गाँव जाकर खादी का प्रचार करना आरंभ कर दिया। स्वतंत्रता के लिए निकलने वाली प्रभातफेरियों में गीत गाए। खादी के प्रचार के लिए चरखा भी काता। इस क्रम में लेखक को गाँधी जी का सानिध्य भी प्राप्त हुआ और आर्शीवाद के रूप में प्रोत्साहन भी मिला।

विशेष :– गाँधी के व्यक्तित्व का लेखक पर प्रभाव दर्शाया गया है।

1.3.3.3 उन्होंने कहा, जब प्रोफेसर को दस मिनट की देर होती है तो उसके विद्यार्थी को दस घंटे की देर

होती है। जब विद्यार्थी को दस घंटे की देर होती है तो समाज को दस महीने की देर होती है। जब समाज को दस महीने की देर होती है, तब देश दस वर्ष पीछे चला जाता है। प्रोफेसर की दस मिनट की देरी देश को दस वर्ष पीछे ले जाती है।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्य–फुलवारी' में संकलित 'रामकुमार वर्मा' द्वारा लिखित संस्मरण 'महात्मा गाँधी' में से लिया गया है, इसमें समय के महत्व को लेकर महात्मा गाँधी के विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

व्याख्या :– लेखक एक बार महात्मा गाँधी से मिलने उनके आश्रम गए तो गाँधी की पत्नी श्रीमती कस्तूरबा ने लेखक को अपनी कुटिया में बिठा लिया जिससे वह महात्मा गाँधी के पास निश्चित समय के दस मिनट की देरी से पहुँचे। महात्मा गाँधी ने समय के महत्व पर लेखक को समझाया कि समय की बर्बादी से कितनी हानि पहुँचती है। गाँधी के अनुसार जब एक प्रोफेसर को दस मिनट की देर होती है तो उसके छात्र दस घंटे पीछे चले जाते हैं। जब एक समाज के विद्यार्थी दस घंटे पीछे रह जाते हैं तो वो समाज दस महीने पीछे चला जाता है। जब समाज दस महीने पिछड़ जाता है तो देश दस साल पीछे चला जाता है। गाँधी जी के अनुसार समय को नष्ट करना बहुत बुरी बात है और विशेष तौर पर अध्यापकों के लिए जो कि देश के निर्माता हैं उनके लिए तो एक मिनट की देरी भी अक्षम्य है।

विशेष :– समय के महत्व को लेकर गाँधी जी के विचारों का चित्रण किया गया है। अध्यापकों की लेट–लतीफी के कारण संपूर्ण देश को होने वाली अपूर्णीय क्षति के बारे में आगाह किया गया है।

1.4 सारांश

सुभान खाँ रेखाचित्र के माध्यम से बेनीपुरी जी ने सांप्रदायिक सद्भाव को बनाए रखने का संदेश प्रेषित किया है। हिंदू–मुसलमान एकता की स्थापना तथा सादगी और परिश्रम की महत्ता को प्रकाशित करना भी लेखक का उद्देश्य रहा है। भाभी रेखाचित्र के माध्यम से महादेवी वर्मा ने एक बाल–विधवा स्त्री के त्रासद जीवन का चित्र खींचा है। महात्मा गाँधी संस्मरण में रामकुमार वर्मा ने महात्मा गाँधी जैसे महान व्यक्ति के जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं के आधार पर उनकी महानता का प्रतिपादन किया है।

1.5 शब्दावली

निम्नलिखित शब्दों के अर्थ मालूम कीजिए–

मरम्मत	राजमिस्त्री	बकरीद
गोश्त	पूए	अबीर
महफूज	खुराफात	ललाट
अनाथिनी	अभागी	निराहार
मिताहार	मोगरी	विषाद

नक्षत्र	राशि	सप्तऋषि
प्रभातफेरी	सान्निध्य	खद्दर

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.6.1 अतिलघुत्तरापेक्षी प्रश्न

(i) संस्मरण और रेखाचित्र में क्या अंतर है?

(ii) 'भाभी' के रेखाचित्रकार का नाम लिखिए।

(iii) 'सुभान खाँ' के लेखक कौन हैं?

(iv) महात्मा गाँधी संस्मरण के लेखक कौन हैं?

1.6.2 परीक्षा में पूछे जाने योग्य प्रश्न

निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

(i) पच्छिम ओर के मुल्क में अल्लाह के रसूल आए थे। जहाँ रसूल आए थे, वहाँ हमारे तीरथ हैं। हम उन्हीं तीरथों की ओर मुँह करके अल्लाह को याद करते हैं।

____

____

____

____

____

(ii) वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे और वह तो विधवा ठहरी! दूसरे समय भोजन करना ही प्रमाणित कर देने के लिए पर्याप्त था कि उनका मन विधवा के संयम–प्रधान जीवन से ऊबकर किसी विपरीत दिशा में जा रहा है।

____

____

____

____

____

(पपप) शताब्दियों में उत्पन्न होने वाली ऐसे महामानव के जन्म से हमारे देश ने जिस स्वाधीनता का स्वप्न देखा था, वह साकार होकर भी स्थिर नहीं रह सका।

____

____

____

____

____

1.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

1.7.1 निर्धारित पुस्तक– गद्यफुलवारी

सम्पादक– डॉ. शहाबुद्दीन शेख एवं अन्य

प्रकाशक– राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

1.7.2 संदर्भ

(i) अतीत के चलचित्र– महादेवी वर्मा, दरियागंज, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002

(ii) माटी की मूरतें– रामवृक्ष बेनीपुरी, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन

(iii) गद्यफुलवारी– डॉ. शहाबुद्दीन शेख, कश्मीरी गेट दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2012

(iv) अतीत के चलचित्र– डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, नई सड़क दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1994

(v) हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास– डॉ. श्रीनिवास शर्मा, नई सड़क दिल्ली अशोक प्रकाशन, 1997

(vi) गद्य की नई विधाओं का विकास– माजदा असद, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।

(vii) हिंदी संस्मरण साहित्य– डॉ. कामेश्वरशरण सहाय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

(viii) कुछ संस्मरण : कुछ झलकियाँ– हरिदत्त भट्ट शैलेष, मौलिक साहित्य प्रकाशन।

B.A. HINDI	**UNIT-1**	**Lesson No. 2**
COURSE CODE: HI-301		**B.A. Sem-III**

सुभान खाँ, भाभी तथा महात्मा गाँधी का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 पठित पाठों का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

2.3.1 सुभान खाँ पाठ का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

2.3.2 भाभी रेखाचित्र का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

2.3.3 महात्मा गाँधी संस्मरण का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख में पाठ्यक्रम में निर्धारित– सुभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी पाठों का प्रतिपाद्य/उद्‌देश्य स्पष्ट किया जाएगा। इन्हें पढ़ने के पश्चात् छात्र–

1. सांप्रदायिक सद्‌भाव और कर्म के महत्व को समझ सकेंगे।
2. छात्रों में त्याग और बलिदान की भावना जागृत होगी।
3. भारतीय समाज में विधवाओं की दयनीय स्थिति से अवगत हो सकेंगे।

4. विधवाओं के उत्थान के प्रति जागरूक हो सकेंगे।

5. महात्मा गाँधी के विचारों से अवगत हो सकेंगे।

6. साहित्य की विभिन्न विधाओं का उद्देश्य समझने में सक्षम हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

'सुभान खाँ' बेनीपुरी जी द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण रेखाचित्र है। जिसमें एक ईमानदार, शांतिप्रिय, सांप्रदायिक सौहार्द, मानवतावादी, कर्मठता आदि गुणों से संपन्न राजमिस्त्री सुभान खाँ का चित्र उकेरा है। महादेवी वर्मा द्वारा रचित भाभी रेखाचित्र में लेखिका ने एक मारवाड़िन बाल विधवा का अत्यंत हृदय विदाहक चित्र खींचा है। नाटकीय जीवन जीने को अभिशप्त भाभी को घर के तमाम काम करते हुए भी पशुओं की भाँति पीटा जाता था।

महात्मा गाँधी संस्मरण में भारतीय समाज पर पड़े गाँधी के प्रभाव को दर्शाया गया है। इस पाठ में हम निर्धारित पाठों का उद्देश्य अथवा प्रतिपाद्य समझने का प्रयास करेंगे।

2.3 पठित पाठों का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

2.3.1 'सुभान खाँ' संस्मरण का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

'सुभान खाँ' नामक पाठ में रामवृक्ष बेनीपुरी ने सुभान खाँ नामक एक मुसलमान राज मिस्त्री का रेखाचित्र खिंचा है जो वास्तव में खुदा का नेक बंदा है और जिसके लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान है।

भारतीय संस्कृति की महत्ता स्थापित करना :– भारतीय जीवन में सभी धर्मों के बीच सदियों से सांझी संस्कृति रही है। भारतीय जनमानस सभी पर्व–त्योहारों– दशहरा, दीवाली, होली, बैसाखी, ईद, मुहर्रम, क्रिसमिस, गुरुपर्व मिलजुल कर मनाता रहा है। मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, चर्च, पीर–फकीरों, साधु–संतों की समाधियों पर उसका आना–जाना बिना किसी भेदभाव के रहा है। सुभान खाँ संस्मरण के माध्यम से लेखक ने भारतीय सांझी संस्कृति के गौरवशाली रूप का चित्रण किया है। लेखक ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। लेखक की पत्नी लेखक के बचपन से जुड़ी मनौती और हुसैन साहिब के प्रति परिवार की निष्ठा के प्रतीक रेशम और सूत के डोरे, बद्धियाँ, गंडे लेखक को अपनी कसम देकर पहनाती है। लेखक की नानी भी उसे बचपन में गंडे ताबीज़ बाँध ाकर सुभान खाँ के साथ मुहर्रम और ताजिए में भेजती थी। लेखक की होली, दीवाली पर सुभान खाँ को अपने हाथों से पुए, खीर और गोश्त इत्यादि खिलाती थीं। सुभान स्वयं भी लेखक के परिवार को ईद–बकरीद पर अपनी खुशियों में शामिल करते थे। सांप्रदायिक सद्भाव का आलम यह था कि जब सुभान खाँ मस्जिद बनवा रहे थे तो उसमें उपयोग होने वाली सारी लकड़ी लेखक के मामा ने अपने बाग से ही दी थी।

साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना करना :–

हिन्दू–मुस्लिम भाईचारे के कारण ही हिन्दूओं ने भी मुहर्रम को अपना त्योहार बना लिया है। इस भाईचारे को

बनाए रखने के लिए सुभान खाँ स्वयं को कुर्बान करने के लिए तैयार बैठे हैं, जिसे देखकर लेखक का सिर सुभान दादा के सामने झुक जाता है– ''मेरा सिर सिज्दे में झुका है– करबला के शहीद के सामने! मैं सप्रेम नमस्कार करता हूँ– अपने प्यारे सुभानदादा को!''

लेखक का मानना है कि साम्प्रदायिक विद्वेष भाईचारे के लिए तो घातक है ही, सम्पत्ति, जान–माल, इज्ज़त और सांझी संस्कृति के लिए भी खतरनाक है। सुभान खाँ और लेखक के मामा इस तथ्य को समझते हैं और दंगा पैदा करने वाली परिस्थितियों और सोच का भरपूर विरोध करते हैं। सुभान खाँ अपनी बनवाई मस्जिद में गाय की कुर्बानी नहीं होने देते। जब खबर फैली कि सुभान दादा की मस्जिद में मुसलमान गाय की कुर्बानी करने जा रहे हैं तो सुभान दादा इस कुर्बानी के विरुद्ध डट गए। सुभान दादा ने मुसलमानों को कड़क कर जवाब दिया– ''गाय की कुर्बानी नहीं होगी। ये फालतू बातें सुनने को मैं तैयार नहीं हूँ। तुम लोग मेरी आँखों के सामने से हट जाओ।'' वे आगे कहते हैं– ''मैं मुसलमान हूँ, कभी अल्लाह को नहीं भूला हूँ। मैं मुसलमान की हैसियत से कहता हूँ, मैं गाय की कुर्बानी न होने दूँगा, न होने दूँगा।''

लेखक के मामा भी हिन्दुओं को दंगा फैलाने से रोकने का हर संभव प्रयास करते हैं। मस्जिद बन जाने पर सुभान दादा गाँव के सारे हिन्दूओं को दावत में बुलाते हैं जिसमें उनकी भावनाओं को ध्यान में रखकर विशेषतौर से उनके लिए खाना बनाने के लिए हिन्दू हलवाई लगवाए जाते हैं।

परिश्रम की महत्ता की स्थापना करना :–

'सुभान खाँ' रेखाचित्र में लेखक ने सुभान खाँ नाम के एक ऐसे मुसलमान का रेखाचित्र खींचा है जो ख़ुदा का नेक बंदा है और हिन्दू–मुस्लिम एकता को अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान मानता है। वह मुस्लिम धर्म को अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान मानता है। वह मुस्लिम धर्म को अपने व्यक्तित्व में ढाले हुए है, पूरी श्रद्धा से मुस्लिम धर्म का पालन करता है। सुभान दादा अल्लाह की इबादत के साथ–साथ कर्म को भी बहुत महत्व देते हैं। दादा अपनी मेहनत और मज़दूरी में ईमानदारी से तालमेल बिठाए रहता है मज़दूरी के बदले में किए गए काम में कमी नहीं रहने देते। उनका मानना था कि काम नहीं करने से अल्लाह नाराज़ हो जाते हैं। उनको सिर्फ अल्लाह और परिश्रम से प्रेम था। सुभान दादा अपने काम के प्रति अत्याधिक ईमानदार और अल्लाह से डरने वाले इंसान हैं। उनकी ईमानदारी का एक उदाहरण देखिए–

''अच्छा जाइए, खेलिए, मैं ज़रा काम पूरा कर लूँ, मज़दूरी भर काम नहीं करने से अल्लाह नाराज़ हो जाएंगे।''

त्याग और बलिदान की प्रेरणा :– तप, त्याग और निष्काम सेवा का भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व रहा है। बलिदान का भाव भी इसी निष्काम सेवा के साथ जुड़ा हुआ है। भारतीय इतिहास बलिदानों की गाथाओं से भरा पड़ा है। शिवि, दधीची इत्यादि महामुनियों ने मानव मूल्यों की रक्षा हेतु हँसकर अपने प्राण अर्पित कर दिए थे। बेनीपुरी जी ने हुसैन साहब के बलिदान के वर्णन के बहाने जनमानस को उच्च मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए मर मिटने के लिए प्रेरित किया है।

निष्कर्षतः सुभान खाँ रेखाचित्र के माध्यम से बेनीपुरी जी ने साम्प्रदायिक सद्‌भाव को बनाए रखने का संदेश

प्रेषित किया है। हिन्दू–मुसलमान एकता की स्थापना तथा सादगी और परिश्रम की महत्ता को प्रकाशित करना लेखक का उद्देश्य रहा है।

2.3.2 महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'भाभी' रेखाचित्र का प्रतिपाद्य/उद्देश्य

छायावादी कविता की प्रमुख कवयित्री तथा हिन्दी गद्य की प्रमुख हत्ताक्षर महादेवी वर्मा का हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है। कविताओं की भाँति इनका सम्पूर्ण गद्य साहित्य भी मानवीय करूणा एवं वेदना से आप्लावित है। सामाजिक जीवन के यथार्थ की पीड़ा विशेषतः नारी के सामाजिक और पारिवारिक शोषण और अत्याचार से उत्पन्न वेदना उनकी गद्यपरक रचनाओं में अभिव्यक्त हुई है। महादेवी द्वारा रचित 'भाभी' रेखाचित्र में लेखिका ने एक बाल विधवा स्त्री के त्रासद जीवन का चित्र खींचा है। भाभी के माध्यम से महादेवी वर्मा ने 19 वर्ष की मारवाड़ी बाल विधवा के स्वप्नों एवं आकांक्षाओं के दमन, उस पर किए जाने वाले अत्याचार, उसकी शारीरिक दुर्बलता और असमय ही आ जाने वाले बुढ़ापे का वर्णन किया है। भाभी के प्रति लेखिका की संवेदनाओं के कारण ही इतने वर्ष बीत जाने पर भी भाभी का करूण मुख लेखिका को कभी भी विस्मृत न हो सका।

लेखिका ने भारतीय समाज में विधवाओं के प्रति किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार को सामने लाने का कार्य किया है। भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति बड़ी दयनीय है और विधवाओं की स्थिति तो अत्यंत दयनीय है। उन्हें मनहूस तथा पति को खा जाने वाली कहकर अपमानित किया जाता है। उसे भरपेट भोजन नहीं करने दिया जाता। उनकी जिंदगी से तमाम रंग छीन लिए जाते हैं। उसे पुर्नविवावह की अनुमति नहीं दी जाती है, बल्कि निराहार एवं मिताहार तथा व्रत उपवास करते हुए सवेरे स्नान, तुलसी–पूजा आदि करते हुए प्रभु भक्ति में लीन रहने के लिए कहा जाता है। कहने को तो वह अभागिन और मनहूस कहलाती है लेकिन घर के तमाम कार्य उसी से करवाए जाते हैं। प्रस्तुत संस्मरण में भाभी को घर के सारे काम खुद ही करने पड़ते हैं। उसका शरीर लगातार निराहार और मिताहार से दुर्बल हो चुका है जिससे वह खड़े–खड़े कार्य करने में भी असमर्थ है। इसीलिए वह अपने खण्डहर जैसे घर और लंबे–चौड़े आँगन को बैठ–बैठकर बुहारती थी। अपने और ससुर के स्नान के लिए कुएँ से पानी खींचते समय भी वह बीच–बीच में ठहरती है। जिससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह बाल विधवा कितनी दुर्बल कर दी गई है। उसे घर के सारे कपड़े भी स्वयं ही धोने पड़ते हैं। उसका घर साक्षात नर्क जैसा है। जिसमें न कोई खिड़की है न कोई झरोखा। नौकर चाकर का तो प्रश्न ही नहीं था। वहाँ तो पशु–पक्षी तक भी नहीं थे।

उस मरघट जैसे घर में तो प्रकाश भी केवल रसोई के लिए जलाने वाली लकड़ियों से ही हो पाता था। उसे किसी से भी बात नहीं करने दी जाती थी। ससुर का कठोर पहरा निरंतर उस पर रहता था। घर के पिछवाड़े में जहाँ से कोई नहीं गुजरता था, उसे वहाँ देखने पर भी चंचल और चरित्रहीन समझा जाता है। संयम में रखने के नाम पर भारतीय विधवा नारी पर कैसे–कैसे अत्याचार किए जाते हैं। प्रस्तुत रेखाचित्र में लेखिका उद्देश्य बाल विधवाओं पर होने वाले शोषण का वर्णन करना है।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्रण :–

प्रस्तुत रेखाचित्र में विधवा स्त्री की समस्याओं का चित्रण किया गया है। जिनके कारण 'भाभी' का जीवन

अभिशप्त हो उठा है। भारतीय समाज में सामाजिक श्रृंखलाओं में सर्वाधिक जकड़ी हुई है नारी। महादेवी स्वयं भावुकमना, संवेदनशील नारी है। परित्यक्ता का जीवन और उसकी विडम्बना का साक्षात्कार स्वयं उन्होंने किया है। स्वभावतः नारी के प्रति उनकी संवेदना अत्यन्त प्रखर है। प्रस्तुत रेखाचित्र में हम दरिद्रता की चक्की में पिसती, रात–दिन, घर–गृहस्थी के कार्यों में छीजती, पुरस्कार में ससुर और ननद द्वारा शारीरिक दण्ड तथा मर्म को छेदने वाले व्यंग्य–वाणों, लांछनों तथा अपशब्दों को सहन करने वाली विधवा किशोर की असहाय अवस्था के करूण चित्र देखते हैं और आह भर कर रह जाते हैं। भाभी की इस करूण स्थिति के लिए एक ओर स्वार्थी, दंभी और क्रूर पुरुषवर्ग उत्तरदायी हैं तो दूसरी ओर नर–कृत शास्त्रों के बंधन, सामाजिक कुरीतियाँ और रूढ़ परम्पराएँ। भारतीय समाज में व्याप्त इन्हीं रूढ़ियों को लेखिका ने भाभी रेखाचित्र के माध्यम से सबके समक्ष प्रस्तुत किया है।

नारी की दुर्दशा का प्रमुख कारण है हिन्दी समाज में विवाह से सम्बद्ध नियम और रूढ़ियाँ। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, स्त्री के लिए पुर्नविवाह का निषेध, पुरुष का बहुपत्नी रखने का अधिकार ये सब मिलकर नारी जीवन को नरक–तुल्य बना देते हैं।

मारवाड़िन बीन्दनी का विवाह एक रोगी युवक से होता है, सब जानते हैं कि रोग असाध्य है, फिर भी वृद्ध पिता उसका विवाह करवा के अबोध बालिका को वैधव्य की आग में झोंक देता है। उस बालिका का सारा जीवन वैधव्य की कठोर यातनाएँ झेलते–झेलते वृद्धा होने की साधना में बीतता है। लेखिका ने उस विधवा किशोरी की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। रात–दिन, घर गृहस्थी के सारे कार्य घर की सफाई, कपड़े धोना, खाना पकाना इत्यादि करने से उसके हाथ–पैर कठोर हो गए हैं, चेहरा कान्तिहीन पीला पड़ गया है। केश उलझ गये हैं। नखों की कान्ति नष्ट हो चुकी है। श्वसुर दिन में एक बार भोजन करते हैं। अतः उसे भी मिताहार करना पड़ता है, और पुण्य–तिथियों एकादशी आदि पर तो निर्जल और निराहार रहकर तपस्या करनी पड़ती है। पहनने के लिए काली ओढ़नी और सफेद लहंगा या सफेद ओढ़नी और काला लहंगा ही दिए जाते हैं। रंगीन, कसीदे कढ़े वस्त्र पहनने की अनुमति नहीं है। कोठरी में रहते–रहते जब दम घुटने लगता है और वह टाट के पर्दे के छेदों में से बाहर का दृश्य देखकर अपना मन बहलाने का प्रयास करती है, तो उसे चंचल दुष्चरित्रा, निर्लज्ज कहकर उसकी भर्त्सना की जाती है।

यह स्थिति केवल मारवाड़ी परिवार की विधवा की ही नहीं, हिन्दू समाज में असंख्य परिवारों की विधवाओं की है। आज भी भारतीय नारी अपने पुरातन संस्कारों, धार्मिक आस्था, पाप'–पुण्य संबंधी मान्यताओं और पौराणिक स्त्री–पात्रों को आदर्श मानकर सात्विकता, शुचिता और पतिव्रत का पालन करती हुई इस कठोर संसार से विदा हो जाती है।

2.3.3 महात्मा गाँधी संस्मरण का उद्देश्य

प्रस्तुत संस्मरणात्मक निबंध में डॉ. रामकुमार वर्मा ने महात्मा गाँधी के साथ बिताए कुछ समय का वर्णन किया गया है। महान व्यक्ति की महानता उसके जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं के आधार पर उनकी महानता का प्रतिपादन किया गया है।

रामकुमार वर्मा ने महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को उभारने का प्रयास किया है। महात्मा गाँधी

की विचारधारा सत्य और अहिंसा की थी, जिससे वे न सिर्फ भारत अपितु विश्वभर में सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रासंगिक व्यक्ति माने जाते हैं। भारतीय राजनीति तो उनकी विचारधारा के इर्द–गिर्द चक्कर काटती ही है, बल्कि समस्त संसार भी उनकी विचारधारा से प्रभावित हुआ है। असहयोग आंदोलन को देशव्यापी बनाने के लिए गाँधी जी ने खिलाफत आंदोलन को सहानुभूति प्रदान की जिससे मुसलमानों का सहयोग भी उनको मिला।

महात्मा गाँधी के राजनीति में आगमन के साथ ही भारतीय राजनीति ने एक नए युग में प्रवेश किया। गाँधी जी ने अपने विचारों से देश के करोड़ों लोगों को प्रभावित किया। आज़ादी के आंदोलन को गाँधी ने जनसाधारण के आंदोलन में परिवर्तित कर दिया। देश की जनता गाँधी जी के आह्वान पर राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लेने लगी। लेखक भी उन्हीं करोड़ों लोगों में से एक थे जिन्होंने गाँधी जी से प्रभावित होकर अपनी जीवन दिशा को समाज सेवा की तरफ मोड़ दिया। लेखक ने असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए दसवीं कक्षा में ही स्कूल छोड़ दिया था। लेखक ने खादी का प्रचार किया, प्रभातफेरियों में गीत गाए और चरखा चलाकर स्वदेशी का प्रचार भी किया।

लेखक ने महात्मा गाँधी संस्मरण के माध्यम से समय के महत्व पर गाँधी जी के विचारों से अवगत कराकर एक महत्वपूर्ण कार्य भी किया है। गाँधी जी समय को अत्याधिक महत्व देते थे। उनके अनुसार जिन देशों ने प्रगति की है, उन्होंने समय की गति को पहचाना है। गाँधी जी का मानना था कि भारतवासी समय की कीमत नहीं पहचानते हैं, जब भारतीय समय की कीमत को पहचान जाएंगे, तब हमारे देश को किसी बात की कमी नहीं रहेगी। उन्होंने लेखक के दस मिनट देर से आने पर अपना रोष प्रकट करते हुए लेखक से कहा– ''जब प्रोफेसर को दस मिनट की देर होती है तो उसके विद्यार्थी को दस घंटे की देर होती है। जब विद्यार्थी को दस घंटे की देर होती है तो समाज को दस महीने की देर हो जाती है। जब समाज को दस महीने की देर होती है, तब देश दस महीने पीछे चला जाता है। प्रोफेसर की दस मिनट की देरी देश को दस वर्ष पीछे ले जाती है।''

प्रस्तुत संस्मरण के माध्यम से लेखक ने यह संदेश देने का भी प्रयास किया है कि बेशक मानव शरीर से कितना भी दुर्बल हो, लेकिन उसकी आत्मा अत्यंत शक्तिशाली है। महात्मा गाँधी के एक–एक शब्द एक–एक वाक्य ने सिर्फ भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व की विचारधारा और राजनीति को प्रभावित किया है।

2.4 सारांश

इस आलेख में आपने सुभान खाँ, भाभी और महात्मा गाँधी नामक पाठों के प्रतिपाद्य और उद्देश्य की जानकारी प्राप्त की है। आशा है, इस आलेख का अध्ययन आपने ध्यानपूर्वक किया होगा और इसे पढ़कर आप पाठ्यक्रम में निध ाारित रेखाचित्र और संस्मरणों का उद्देश्य को अच्छी तरह समझ गए होंगे।

2.5 शब्दावली

निम्नलिखित शब्दों के अर्थ मालूम कीजिए –

तसबीह	कुर्बानी	लाजिमी
जुंबीश	देवदूत	अवशेष

दिलजमई	मुहाल	यजीद
मारवाड़ी	दैत्य	दालान
आभासित	बेडौल	कशीदा

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 अतिलघुत्तरापेक्षपी प्रश्न

(i) भाभी रेखाचित्र के लेखक हैं–

क) रामबृक्ष बेनीपुरी ख) रामकुमार वर्मा

ग) महादेवी वर्मा घ) सुभद्रा कुमारी चौहान

(ii) महात्मा गाँधी पाठ के अनुसार अलीबन्धु किस आंदोलन का प्रचार कर रहे थे?

(iii) सुभान खाँ का पेशा क्या था?

3.6.2 परीक्षा में पूछे जाने योग्य प्रश्न

(i) भाभी रेखाचित्र के माध्यम से लेखिका क्या संदेश देना चाहती हैं?

____

____

____

____

____

(ii) महात्मा गाँधी संस्मरण का प्रतिपाद्य लिखिए।

____

____

____

____

____

(iii) सुभान खाँ पाठ का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

____

____

____

____

____

3.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

(i) अतीत के चलचित्र– महादेवी वर्मा, दरियागंज, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002

(ii) माटी की मूरतें– रामवृक्ष बेनीपुरी, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन

(iii) गद्यफुलवारी– डॉ. शहाबुद्दीन शेख, कश्मीरी गेट दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2012

(iv) अतीत के चलचित्र– डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, नई सड़क दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1994

(v) हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास– डॉ. श्रीनिवास शर्मा, नई सड़क दिल्ली अशोक प्रकाशन, 1997

(vi) गद्य की नई विधाओं का विकास– माजदा असद, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।

(vii) हिंदी संस्मरण साहित्य– डॉ. कामेश्वरशरण सहाय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

(viii) कुछ संस्मरण : कुछ झलकियाँ– हरिदत्त भट्ट शैलेष, मौलिक साहित्य प्रकाशन।

सुभान खाँ, भाभी तथा महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व/चरित्र–चित्रण

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 पठित पाठों में चित्रित व्यक्तित्वों का चरित्र–चित्रण

3.3.1 सुभान खाँ

3.3.2 भाभी

3.3.3 महात्मा गाँधी

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख में पाठ्यक्रम में संकलित रेखाचित्र–संस्मरणों के केंद्रीय पात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विवेचना की जाएगी। इसके अंतर्गत भाभी, सुभान खाँ और महात्मा गाँधी की चारित्रिक विशेषताओं से छात्रों को अवगत कराया जाएगा। इस आलेख को पढ़ने के पश्चात् छात्र–

1. सुभान खाँ की चारित्रिक विशेषताओं जैसे कर्मठता, विद्वता, सज्जनता और सांप्रदायिक सौहार्द के समर्थक आदि से परिचित होंगे।

2. बाल–विधवा भाभी के चरित्र के गुणों से परिचित होने के साथ–साथ भाभी के साथ होने वाले अत्याचारों से परिचित होंगे।

3. समाज के दीन–दुखियों के प्रति छात्रों में संवेदनशीलता का विकास होगा।
4. तत्कालीन एवं समकालीन समाज पर गाँधी के प्रभाव को समझ सकेंगे।
5. गाँधी की विचारधारा को आत्मसात करते हुए गाँधी के सद्कर्मों का अनुसरण करने को प्रेरित होंगे।

3.2 प्रस्तावना

रेखाचित्र और संस्मरण आधुनिक गद्य की विकसित विधाओं में चर्चित दो विधाएं हैं। जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू–ब–हू चित्र बन जाता है, तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। इस प्रकार के विपरीत जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उसका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं। प्रस्तुत आलेख में सुभान खाँ, भाभी एवं महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श किया जाएगा।

3.3 केंद्रीय पात्रों का चरित्र–चित्रण / व्यक्तित्व

3.3.1 सुभान खाँ का चरित्र–चित्रण

'सुभान खाँ' रामवृक्ष बेनीपुरी की चर्चित पुस्तक 'माटी की मूरतें' में से एक रेखाचित्र है। सुभान खाँ इस रेखाचित्र का नायक है। उसी को लेकर लेखक ने बिम्ब मूलक स्मृति शैली में एक विशिष्ट व्यक्तित्व को रूपाकार दिया है। उसके गुण–दोषों को उभारा है। सुभान खाँ मुसलमान हैं। राजमिस्त्री हैं। खुदा परस्त इंसान हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक है। उनके चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

ऊँची कद काठी का आकर्षक व्यक्तित्व :– सुभान खाँ लम्बे–चौड़े डील–डौल के अधेड़ आदमी हैं। उनकी देह बलिष्ठ है। चेहरे पर दिव्यता टपकती है। लम्बी सफेद दाढ़ी में वह अत्यंत शालीन एवं सौम्य लगते हैं। लेखक ने उनका रेखाचित्र कुछ इस प्रकार खींचा है, ''लम्बा–चौड़ा, तगड़ा है बदन इनका। पेशानी चौड़ी, भवें बड़ी सघन और उभड़ी। आँखों के कोनों में कुछ लाली और पुतलियों में कुछ नीलेपन की झलक। नाक असाधारण ढंग से नुकीली। दाढ़ी सघन, इतनी लम्बी की छाती तक पहुँच जाए– वह छाती, जो बुढ़ापे में भी फैली, फूली हुई। सिर पर हमेशा ही एक दुपलिया टोपी पहने होते और बदन में नीमस्तीन। कमर में कच्छेवाली धोती, पैर में चमरौंधा जूता। चेहरे से नूर टपकता, मुँह से शहद झरता। भले मानसों के बोलने–चालने, बैठने–उठने के कायदे की पूरी पाबंदी करते वह।'' बेनीपुरी जी ने सुभान खाँ की भव्यता को इसी रूप में प्रकट किया है।

भक्ति और आस्था में डूबा व्यक्तित्व :– सुभान खाँ पाँच वक़्त के नमाज़ी हैं। अल्लाह पर उन्हें पूर्ण विश्वास है। मानवीय गुणों से भरपूर वह एक नेक व्यक्ति हैं। वह धार्मिक वैमनस्य से कोसों दूर हैं और बिना किसी भेदभाव के इंसान और इंसानियत से प्रेम करने वाले हैं। अल्लाह के प्रति उनकी आस्था देखते ही बनती है। वे नियमों को मानने वाले हैं। हज करने के बाद वह पूरे ईश्वरीय भक्ति में डूब जाते हैं। मस्जिद बनवाते हैं और उसकी देखभाल करते हैं। गाय–वध का विरोध करते हैं और खुदा की दहलीज पर खुद कटने के लिए बैठ जाते हैं।

चरित्रवान कर्मठ व्यक्तित्व :– सुभान खाँ लालची नहीं हैं। रुपये–पैसे को केवल इतना ही महत्व देते हैं कि रख–रखाव और परिवार की जिम्मेदारी को पूरा कर सकें। हज से आने पर जब मस्जिद बनवाने के कार्य में जुटते हैं तो अपनी समस्त जमा–पूँजी उसमें लगा देते हैं। नेक नियम के पक्के हैं। बड़ों का अदब करते हैं और छोटों को भरपूर स्नेह और प्यार देना भी जानते हैं। सुभान खाँ ऊँचे चरित्र के आदमी हैं। उनमें कोई खोट नहीं है। उनमें संकुचित मनोवृति वाला मज़हबी कठमुलापन नहीं है। वे अत्यंत परिश्रमी और कर्मठ हैं। वगैर काम किए एक कौर भी गले से नीचे उतारना पाप समझते हैं। उनका मानना है कि बिना परिश्रम की रोटी खाने से खुदा की अवमानना होती है। वह पूजा–अर्चना, आस्था और श्रम को ही व्यक्ति की कर्मगति मानते हैं।

इज्ज़तदार बुजुर्ग :– सुभान खाँ इज्ज़तदार बुजुर्ग हैं। गाँव के लोग उनकी ईमानदारी के कायल हैं। वे उनका बहुत सम्मान करते हैं। उनकी पक्षपात रहित दृष्टि, न्यायप्रियता के कायल हैं। लोग अपने विवादों में उन्हें पंच नियुक्त करते हैं। उनका निर्णय स्वीकार करते हैं। उनकी बात और सलाह को मानते हैं। अपने विवेक से वह हिंदू–मुस्लिम फसाद होने से बचाते हैं। वे बुजुर्ग हैं और बुजुर्गियत के सारे गुण इनमें विद्यमान हैं। वे सच्चे अर्थों में लोक–पुरुष हैं। समग्रतः वह एक अनुकरणीय और आदरणीय व्यक्तित्व के धनी हैं। जो इंसान को जोड़ना सिखाता है, तोड़ना नहीं।

3.3.2 भाभी का चरित्र–चित्रण / व्यक्तित्व

प्रस्तुत रेखाचित्र में लेखिका ने एक बाल विधवा स्त्री के त्रासद जीवन का चित्र खींचा है, जिससे उनकी भेंट बचपन में हुई थी हमारे देश में विधवाओं की स्थिति कितनी शोचनीय है। इसका अनुमान शायद हो नहीं पाता यदि लेखिका उस मारवाड़ी बहू से नहीं मिलती। युवा अवस्था में जीवन के सारे रंग त्यागकर केवल काला और सफेद इन्हीं दो रंगों को अपनाने पर मजबूर मारवाड़ी की बहु का लेखिका के जीवन पर इतना असर हुआ कि उन्होंने भी सदा के लिए अपने जीवन से इन दो रंगों के अतिरिक्त बाकी सारे रंगों को त्याग दिया। भाभी के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) बाल विधवा :– भाभी बाल विधवा है। विवाह के कुछ समय बाद ही उसके पति की मृत्यु हो गई। अनाथ तो वह पहले ही थी अब अभागिन भी कहलाने लगी थी। उसके बूढ़े ससुर न उसे कहीं बाहर जाने देते थे और न ही किसी को अपने घर आने देते थे। जिस घर में वह रहती थी वहाँ न कोई रोशनदान था और न ही कोई झरोखा था। उस घर में न कोई नौकर था और न ही कोई पशु–पक्षी। उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी। वैधव्य ने उसकी ज़िंदगी से सारे रंग चुरा लिए थे। भाभी हमेशा सफेद ओढ़नी और काला लहँगा या काली ओढ़नी और सफेद बूटीदार कत्थई लहँगा ही पहन सकती थीं। एक बार लेखिका ने अपने हाथों से धानी रंग की ओढ़नी को नीले रंग के फूलों से काढ़कर उनके सिर पर डाल दिया। भाभी उस सुंदर रंगीन ओढ़नी को पाकर क्षणभर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गई, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे। उसी समय उनके ससुर और ननद भी वहाँ पहुँच गए और उन्होंने भाभी को इतना मारा कि मार खाते–खाते भाभी बेसुध हो गई।

2) अशिक्षित :– भाभी अशिक्षित थीं। इसी से लेखिका की विद्वता की धाक उन पर सहज ही जम गई थी। जब लेखिका सभी पशुओं के अंग्रेजी नाम बताती थी और अंग्रेजी कविता सुनाती थीं तो भाभी विस्मय से भर जाती

थी। लेखिका ने जब उनको हिन्दी की पुस्तक से 'माता का हृदय' और 'भाई का प्रेम' आदि कहानियाँ सुनाई तो भाभी उनको सुनके भावुक हो उठी थीं। जब लेखिका ने अपने मामा को चिट्ठी लिखने की बात बताई तब भाभी के मन में भी बीकानेर के पास किसी गाँव में रहने वाली बुआ की स्मृति ताजा हो उठी थी। लेकिन वह बुआ का पता नहीं जानती थीं और अक्सर लंबी साँस लेकर कहती– 'पता नहीं जानती, नहीं तो तुमसे एक चिट्ठी लिखवा कर डाल देती।'

3) **परिश्रमी** :– भाभी अत्यंत दुर्बल परन्तु परिश्रमी किशोरी हैं। प्रायः निराहार और मिताहार से भाभी अत्यंत दुर्बल हो गई थीं। वह खण्डर–जैसे घर और लम्बे–चौड़े आंगन को बैठ–बैठकर बुहारती थी। आंगन के कुएँ से अपने और अपने ससुर के स्नान के लिए ठहर–ठहर पानी खींचती थी। धोबी के अभाव में मैले कपड़ों को धोती थी। अँधेरी रसोई में सूखी–गीली लकड़ियों से खाना बनाती थी। गीली–सूखी राख से बर्तनों को चाँदी–सोने के समान चमकाकर तथा कपड़े से पोंछकर रखती थी। लेखिका के अनुसार– ''काम चाहे कैसा ही कठिन रहा हो, शरीर चाहे कितना ही क्लांत रहा हो, मैंने न कभी उसकी हँसी से आभासित मुख–मुद्रा ने अंतर पड़ते देखा और न कभी काम रूकते देखा।''

4) **आकर्षक व्यक्तित्व** :– भाभी का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक है। उनका मुख छोटा एवं गोल है। उनका ललाट चेहरे की अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा हैं लंबी बरौनियों वाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई सी आँखें, छोटी सीधी–सी नाक, और हँसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहने वाले होठों वाली भाभी का व्यक्तित्व आकर्षक होते हुए भी बड़ा करुण–सा जान पड़ता है।

भाभी की हथेलियाँ कहीं से कोमल तो कहीं से कठोर हैं। नाखून उनके क्रांतिहीन हैं और गोरी रूखी बाँहें एकदम दुर्बल हैं। उनके छोटे पैरों की उँगलियाँ कुछ लम्बी हैं।

5) **सहनशीन** :– भाभी स्वभाव से अत्यंत सहनशील थी। उसकी शहर में रहने वाली ननद अक्सर अपने नैहर आती रहती थी और किसी न किसी बात पर भाभी की बहुत पिटाई करती थी। जिससे भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर जलने के लंबे, काले निशान और पैरों पर नीले दाग पड़े रह जाते थे। इतने अत्याचार सहती हुई भाभी किसी से भी अपना दुःख नहीं कह पाती थी। लेखिका के उन निशानों के बारे में पूछने पर भाभी लेखिका को कुछ नहीं बताती थी और उसका मन गुड़िया की समस्या में अटका देती थी। लेखिका द्वारा रंगीन ओढ़नी ओढ़ाने की घटना के बाद जो हुआ लेखिका के अनुसार– ''इसके उपरान्त जो हुआ वह तो स्मृति के लिए भी अधिक करूण है। क्रूरता का वैसा प्रदर्शन मैंने फिर कभी नहीं देखा। बचाने का कोई उपाय न देखकर ही कदाचित ज़ोर–ज़ोर से रोना आरंभ किया, परन्तु बच तो वह तब सकी, जब मन से ही नहीं, शरीर से भी बेसुध हो गई।

6) **ममतामयी** :– भाभी अत्यंत दयनीय एवं एकांकी जीवन जीने को अभिशप्त थी। उसके जीवन के सुनहरे स्वप्न दुर्दिन की भेंट चढ़ चुके थे। क्रूरता सहन करती हुई, अभावमयी नारकीय जीवन जीने को मज़बूर भाभी ने अपनी सम्पूर्ण ममता आठ वर्ष की लेखिका को सौंप दी थी। वह लेखिका के साथ गुड़ियों वाले खेल खेलती थी। गुड़ियों के कपड़े सीने का काम करती थी। वह लेखिका को बार–बार बुलवाती थी और नए–नए गुड़ियों के कपड़े दिखाती, नए–नए घरोंदे बनाती और हर तरह से लेखिका को प्रसन्न रखने के प्रयास करती। वह टाट के परदे से हमेशा लेखिका के आने का इंतज़ार करती रहती।

अंत में कहा जा सकता है कि भाभी, समाज की विसंगतियों की शिकार महिलाओं का एक जीता जागता उदाहरण है। जिन पर समाज निरंतर अत्याचार करता आ रहा है। बाल विधवाओं की त्रासद स्थिति को व्यक्त करने में भाभी रेखाचित्र पूर्ण रूप से सफल रहा है।

3.3.3 संस्मरण के आधार पर महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व अथवा चरित्र–चित्रण

विश्व राजनीति के ध्रुव नक्षत्र महात्मा गाँधी में विद्धता, कर्मठता, सत्य और अहिंसा के प्रति निष्ठा और समाज के पीड़ित वर्ग के प्रति करूणा थी। गाँधी जी ने स्वाधीनता आंदोलन में जन–साधारण की भागीदारी को सुनिश्चित किया। उन्होंने देश के युवाओं के मन में स्वाधीनता की लहर पैदा की। पाठ के आधार पर गाँधी जी के व्यक्तित्व की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

समय के महत्व की पहचान :– गाँधी जी समय के महत्व को पहचानते थे। उनके प्रत्येक मिनट का कार्यक्रम निर्धारित था। समय की बर्बादी से वे अत्यंत दुखी होते थे। गाँधी जी का मानना था कि विदेशों में जिन देशों ने प्रगति की है, उन्होंने समय के महत्व को पहचाना है। वे समय के एक–एक क्षण को रत्नों की भाँति संचयन कर रचनात्मक कार्यों की कसौटी पर कसते हैं। गाँधी के अनुसार भारतीय समय को धूल की भाँति फूँक मार कर उड़ा दिया करते हैं। गाँधी का मानना था कि हमारा देश जब समय की कीमत करना सीख जाएगा, तब हमारे देश में भी किसी बात का कोई अभाव नहीं रहेगा।

लेखक जब निश्चित समय से दस मिनट की देरी से गाँधी के पास पहुँचा तब गाँधी जी ने लेखक को समय के महत्व पर नसीहत देते हुए कहा था, ''जब प्रोफेसर को दस मिनट की देर होती है तो उसके विद्यार्थी को दस घंटे की देर होती है। जब विद्यार्थी को दस घंटे की देर होती है तो समाज को दस महीने की देर होती है। जब समाज को दस महीने की देर होती है, जब देश दस वर्ष पीछे चला जाता है। प्रोफेसर की दस मिनट की देरी देश को दस वर्ष पीछे ले जाती है।''

विश्व राजनेता :–

राजनीति में पर्दापण करने से लेकर वर्तमान समय तक महात्मा गाँधी राजनीतिक संसार सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वमान्य राजनेता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। राजनीति में उनके कद का अनुमान लगाने के लिए लेखक की यह पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

''आकाश मंडल के उत्तर में एक नक्षत्र राशि का नाम सप्तऋषि मंडल है और यह सप्तऋषि मंडल जिस नक्षत्र की परिक्रमा करता है, उसका नाम ध्रुव नक्षत्र है। मुझे ऐसा लगा कि इस देश के ही नहीं, समस्त संसार की राजनीतिक दृष्टियाँ जिसकी परिक्रमा करती हैं, उसका नाम महात्मा गाँधी है।''

सफल कूटनीतिज्ञ :–

देश को स्वाधीन बनाने के लिए गाँधी जी ने अनेक आंदोलन खड़े किए। किसी भी आंदोलन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कितने लोगों का सहयोग उस आंदोलन को प्राप्त हो रहा है। असहयोग आंदोलन को

सफल और देशव्यापी बनाने के लिए गाँधी ने मुसलमानों द्वारा चलाए जा रहे खिलाफत आंदोलन को सहानुभूति प्रदान की। गाँधी द्वारा खिलाफत का समर्थन करने पर देश का मुसलमान वर्ग भी असहयोग आंदोलन के समर्थन में आ गया। अंततः कहा जा सकता है कि लेखक ने गाँधी के व्यक्तित्व को अपने संस्मरण में बखूबी उभारा है।

3.4 सारांश

समग्रतः कहा जा सकता है कि पठित संस्मरण और रेखाचित्रों के प्रमुख पात्र पाठक के मन में अपने व्यक्तित्व से अमिट प्रभाव छोड़ने में सफल रहे हैं। सुभान खाँ और महात्मा गाँधी दोनों ही अनुकरणीय व्यक्तित्व के धनी हैं, जो इंसानों को समय की कद्र करना सिखाते हुए कर्म करने की प्रेरणा देते हैं। भाभी का व्यक्तित्व वेदना और दुःख की पराकाष्ठा तक पहुँचा है। उस पर होने वाले अत्याचार मन में अवसाद भर देते हैं।

3.5 शब्दावली

निम्नलिखित शब्दों के अर्थ मालूम कीजिए –

कर्मठ	बलिष्ठ	डील–डौल
पुतली	असाधारण	अदब
प्राचीर	खँडहर	ओढ़नी
त्रासद	अमावस'–पूनो	वृद्धा
मौखिक परिक्षा	अभिशाप	शाला

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 अतिलघुत्तरापेक्षपी प्रश्न

(i) निम्नलिखित में से कौन–सा गुण सुभान के चरित्र से मेल नहीं खाता है?

क) ईमानदारी ख) आलसी

ग) कर्मठ घ) भक्त

(ii) महादेवी वर्मा के किसी एक रेखाचित्र का नाम लिखिए।

(iii) निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर हाँ/नहीं में दीजिए –

महात्मा गाँधी समय को अधिक महत्व नहीं देते थे।

3.6.2 परीक्षा में पूछे जाने योग्य प्रश्न

(i) सुभान के व्यक्तित्व को अपने शब्दों में लिखिए।

____

____

____

____

____

(ii) भाभी के चरित्र की विशेषताएं लिखिए।

____

____

____

____

____

(iii) महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व के किन पहलुओं ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया? पाठ के आधार पर विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

____

____

____

____

____

3.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

(i) अतीत के चलचित्र– महादेवी वर्मा, दरियागंज, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002

(ii) माटी की मूरतें– रामवृक्ष बेनीपुरी, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन

(iii) गद्यफुलवारी– डॉ. शहाबुद्दीन शेख, कश्मीरी गेट दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2012

(iv) अतीत के चलचित्र– डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, नई सड़क दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1994

(v) हिंदी साहित्य का आधुनिक इतिहास– डॉ. श्रीनिवास शर्मा, नई सड़क दिल्ली अशोक प्रकाशन, 1997

(vi) गद्य की नई विधाओं का विकास– माजदा असद, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।

(vii) हिंदी संस्मरण साहित्य– डॉ. कामेश्वरशरण सहाय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

(viii) कुछ संस्मरण : कुछ झलकियाँ– हरिदत्त भट्ट शैलेष, मौलिक साहित्य प्रकाशन।

B.A. HINDI **UNIT-II** **Lesson No. 4**

COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

सदाचार का ताबीज, एक बड़े अस्पताल के बारे में, मैं धोबी हूँ तथा गप–शप की सप्रसंग व्याख्याएँ

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 सप्रसंग व्याख्या

4.3.1 सदाचार का ताबीज (व्यंग्य)

4.3.2 एक बड़े अस्पताल के बारे में

4.3.3 मैं धोबी हूँ

4.3.4 गप–शप

4.4 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

4.1 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ के उद्देश्य पाठयक्रम में निर्धारित पाठों की सप्रसंग व्याख्या से विद्यार्थियों को अवगत कराना है।

4.2 प्रस्तावना – प्रस्तुत पाठ में हम निर्धारित पाठों के लेखकों की रचनाओं की व्याख्या सप्रसंग करते हुए उनका विस्तृत अध्ययन भी करेंगे।

4.3 सप्रसंग व्याख्याएँ

4.3.1 सदाचार का ताबीज (व्यंग्य)

एक दरबारी ने कहा – हुजूर वह हमें नहीं दिखेगा। सुना है, वह बहुत बारीक होता है हमारी आँखें आप

की विराटता देखने की इतनी आदी हो गई हैं कि हमें बारीक चीज नहीं दिखती। हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो उसमें हमें आपकी ही छवि दिखेगी, क्योंकि हमारी आँखों में तो आपकी ही सूरत बसी है।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई है। इसका संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। यह पंक्तियाँ हरिशंकर परसाई के व्यंग्य 'सदाचार का ताबीज' से ली गयी है। लेखक ने यहाँ पर एक राजा की भ्रष्टाचार सम्बन्धी चिन्ता को उसके दरबारियों के सामने प्रकट किया है तथा दरबारियों द्वारा राजा की चापलूसी का वर्णन किया है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि भरे दरबार में राजा ने जब अपने दरबारियों को पूछा कि क्या उन्होंने भ्रष्टाचार को देखा है तो उत्तर में एक दरबारी चापलूसी करते हुए कहता है कि हमें वो नहीं दिख सकता क्योंकि वह तो बहुत बारीक होता है और हमारी आँखें तो आपकी विराटता देखने की इतनी आदी हो गई है कि हमें बारीक चीज दिखाई ही नहीं दे सकती।

विशेष – प्रस्तुत पंक्तियाों में लेखक ने चापलूस दरबारियों के माध्यम से वर्तमान सरकारी कर्मचारियों की प्रवृति पर भी प्रकाश डाला है। राजा के चापलूस दरबारियों की तरह वे भी अपने आफिसरों की झूठी–सच्ची प्रशंसा करने से पीछे नहीं हटते।

एक दरबारी ने पूछा – "पर वह है। कहाँ? कैसे अनुभव होता है।"? विशेषज्ञों ने जवाब दिया – वह सर्वत्र है। वह इस भवन में है वह महाराज के सिंहासन में है।"

"सिंहासन में है" कहकर राजा साहब उछलकर दूर खड़े हो गए। विशेषज्ञों ने कहा – हाँ, सरकार सिंहासन में है। पिछले माह इस सिंहासन पर रंग करने के लिए जिस बिल का भुगतान किया गया है, वह बिल झूठा है। वह वास्तव में दुगने दाम का है। आधा पैसा बीच वाले खा गए। आपके पूरे शासन में भ्रष्टाचार है और वह मुख्यतः घूस के रूप में है।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई हैं। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। यह पंक्तियाँ हरिशंकर परसाई के व्यंग्य 'सदाचार का ताबीज' में से ली गयी है। इस व्यंग्य में लेखक ने राजा और उसके दरबारियों के माध्यम से वर्तमान युग में फैली भ्रष्टाचार की समस्या पर प्रकाश डाला है जो कि दिखाई नहीं देती पर सर्वत्र विद्यमान है इन पंक्तियों में राजा और उसके दरबारियों द्वारा भ्रष्टाचार की समस्या तथा भ्रष्टाचार को ढूँढने के लिए विशेषज्ञों को बुलाया गया है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि राजा के एक दरबारी द्वारा पूछने पर कि भ्रष्टाचार कहाँ है और कैसे दिखाई देता है तो विशेषज्ञ जवाब देते हैं कि वह तो सर्वत्र विद्यमान है यहाँ तक कि राजा के सिंहासन में भी विद्यमान है। राजा द्वारा इस बात पर आश्चर्य प्रकट करने पर विशेषज्ञ स्पष्ट करते हैं कि पिछले महीने राजा के सिंहासन पर रंग करने के लिए जिस बिल का भुगतान किया गया था, वह बिल झूठा था। वह वास्तव में अपने खर्चे से दुगने दाम का था। आधा पैसा बिचोलिए खा गए। घूस के रूप में रंग करने वालों से उन्होंने यह पैसा वसूल किया। इसलिए यह भ्रष्टाचार घूस के रूप में आपके पूरे शासन और राज्य में विद्यमान है।

राजा ने कहा – "पर करें क्या? तुम लोगों ने भी भ्रष्टाचार मिटाने की योजना का अध्ययन किया है। तुम्हारा क्या मत है? क्या उसे काम में लाना चाहिए"

दरबारियों ने कहा – "महाराज, वह योजना क्या है, एक मुसीबत है। उसके अनुसार कितने उलट–फेर करने पढ़ेंगे। कितनी परेशानी होगी। सारी व्यवस्था उलट–पलट हो जाएगी। जो चला आ रहा है, उसे बदलने से नई–नई कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं। हमें तो कोई ऐसी तरकीब चाहिए जिससे बिना कुछ उलट–फेर किए भ्रष्टाचार मिट जाए।

प्रसंग – यह पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई हैं। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। यह पंक्तियाँ हरिशंकर परसाई द्वारा रचित व्यंग्य 'सदाचार का ताबीज' में से ली गयी हैं। इन पंक्तियों में राजा द्वारा भ्रष्टाचार की समस्या को दूर करने के लिए विशेषज्ञों द्वारा जो योजना तैयार करवाई गयी और उसे लागू करने में जो परेशानियाँ आ रही हैं उन पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि राजा भ्रष्टाचार की समस्या को दूर करने के लिए उस पर बनाई गई योजना को लागू करने और उसे लागू करने के लिए सामने आ रही परेशानियों को दूर करने के लिए दरबारियों को बुलाता है। और उन्हें इस बारे में पूछने पर निराशाजनक उत्तर पाता है। वे राजा को हतोत्साहित करते हुए कहते हैं कि यह योजना तो एक मुसीबत है। इस योजना को लागू करने पर सारी व्यवस्था उलट–पुलट हो जाएगी कितने ही उलट–फेर करने पड़ेंगे। जो जैसा चला आ रहा है उसे बदलने से नई–नई समस्याएँ पैदा हो जाएँगी इसलिए भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए इस योजना को लागू करने की अपेक्षा कोई दूसरी तरकीब सोचनी चाहिए जिससे बिना कुछ उलट–फेर किए भ्रष्टाचार मिट जाए।

"राजा ने खुश होकर कहा – मुझे नहीं मालूम था कि मेरे राज्य में ऐसे चमत्कारी साधू भी हैं। महात्मन, हम आपके बहुत आभारी हैं। आपने हमारा संकट हर लिया। हमन सर्वव्यापी भ्रष्टाचार से बहुत परेशान थे। मगर हमें लाखों नहीं, करोड़ों ताबीज चाहिए। हम राज्य की ओर से ताबीजों का कारखाना खोल देते हैं। आप उसके जनरल मैनेजर बन जाएँ और अपनी देख–रेख में बढ़िया ताबीज बनवाएँ"।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई हैं। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। इन पंक्तियों के रचियता 'सदाचार का ताबीज' व्यंग्य के लेखक हरिशंकर परसाई हैं। इन पंक्तियों में लेखक ने सरकारी कार्यालाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार के उस भ्रष्ट रूप पर प्रकाश डाला है जहाँ सरकारी पैसों का प्रयोग जनकल्याण में लगायी जाने वाली योजनाओं की अपेक्षा बेसिर–पैर की योजनाओं में लगा कर रिश्वत खाई जाती है। इस तथ्य को यहाँ पर राजा और उसके दरबारियों द्वारा व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भ्रष्टाचार को एक ताबीज के द्वारा मिटाने के साधु के दावे में भ्रष्ट दरबारियों की चाल और भ्रष्टाचार छिपा हुआ है।

व्याख्या – राजा के घूसखोर दरबारी भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए एक साधु को राजा के पास ले आते हैं तो वह एक ताबीज द्वारा भ्रष्टाचार की बात राजा से कहता है जो कि सम्भव नहीं है। परन्तु सीधा–साधा राजा साधु की बातों में आकर प्रसन्न होता हुआ कहता है कि उन्हें नहीं मालूम था कि उसके राज्य में ऐसे चमत्कारी साधु भी हैं जो

सारे संकट दूर करने में सक्षम हैं। हम चारों तरफ विद्यमान भ्रष्टाचार से बहुत परेशान थे, आपने हमारा संकट दूर कर दिया। मगर हमें भ्रष्टाचार की इस समस्या को दूर करने के लिए लाखों, करोड़ों की संख्या में ताबीज चाहिए। हम ताबीजों के उत्पादन के लिए राज्य में एक कारखाना खेल देते हैं आप उसके जनरल मैनेजर बन जाएँ और ताबीज बनवाएं।

4.3.2 एक बड़े अस्पताल के बारे में

इस नगर विशेष में जहाँ मैं फिलहाल नियुक्त हूँ, एक अस्पताल वाकई बहुत बड़ा है। यह मेडिकल कालेज का ही एक हिस्सा है। जब मेडिकल कालेज के डाक्टर व छात्र लोग अपनी मोटी–मोटी पोथियाँ पढ़ते–पढ़ते थक जाते हैं तब वे रोगियों की देह से मनचाही खिलवाड़ करने के लिए अस्पताल आ जाते हैं और ठीक इसी प्रकार जब अस्पताल में किसी रोगी के प्राण चले जाते हैं तो डाक्टर लोग अपना गम गलत करने के लिए कालेज चले जाते हैं। जहाँ दवा के नाम पर खरीदी हुई दारू पी जाती है।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई हैं। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। इन पंक्तियों के रचियता 'एक बड़े अस्पताल के बारे में' व्यंग्य के लेखक रविंद्र त्यागी हैं। इन पंक्तियों में लेखक ने मेडिकल कालेज के छात्रों में जिम्मेदारी की भावना के बजाए जो लापरवाही और गैर–जिम्मेदारी की भावना आ गई है। उसका चित्रण यहाँ पर किया गया है।

व्याख्या – अपने एक भुक्त भोगी भोगी अनुभव में लेखक यहाँ पर एक अस्पताल के मेडिकल छात्रों के बारे में बताते हुए कहता है कि ये लोग अब अपने पेशे के प्रति गम्भीर नहीं रहे। जब ये लोग अपनी किताबें पढ़ते थक जाते हैं तो मन बहलाने के लिए अस्पताल आ जाते हैं और उचित प्रकार से रोगियों की देखभाल नहीं करते और जब उचित देखभाल के अभाव में किसी रोगी की मृत्यु हो जाती है तो ये लोग गम गलत करने के लिए कॉलेज वापिस जा कर वहाँ दवा के नाम पर रखी दारू पीकर मस्त हो जाते हैं।

इस अस्पताल में प्रवेश पाने के लिए कोई पन्द्रह पृष्ठ का फार्म भरना पड़ता है और स्थिति यह है कि कई लोग तो इस फार्म को भरते–भरते ही दिवंगत हो चुके हैं जो कोई बच जाता है, वह भीतर जाकर मरता है। आरोग्य परमं लाभ निर्णाणं परम सुखम। प्रवेश–पत्र देने वाले दफ्तर के पास ही 'कैजुअल्टी विभाग है' जो सर्वथा उचित है। भीतर जाकर आप अपने मनचाहे विभाग में जा सकते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई है। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। यह पंक्तियाँ रविंद्र त्यागी द्वारा रचित व्यंग्य 'एक बड़े अस्पताल के बारे में' से लिया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने अस्पताल में दाखिला पाने की जटिल प्रक्रिया में जूझते लोगों का वर्णन किया है।

व्याख्या – लेखक यहाँ पर कहता है कि चाहे मरीज की हालत कितनी भी खराब हो अस्पताल में दाखिले के लिए उसे जिन अपौपचारिकताओं को पूरा करना पड़ता है वह बड़ी ही लम्बी और जटिल है। हालत यह होती है कई लोग तो पन्द्रह पृष्ठ के इस फार्म को भरते–भरते ही प्राण त्याग देते हैं और जो फार्म भर कर अस्पताल में दाखिला पा लेते हैं वे अस्पताल के अन्दर प्राण त्याग देते हैं इसीलिए कहते हैं कि बशर्ते आरोग्य मरीज को परम लाभ देता

है परन्तु निर्वाण यानि इस लोक से कूच तो सदा के लिए सुखी कर देता है। लेखक यह भी कहता है कि अस्पताल में दाखिले का प्रवेश–पत्र देने वाले दफ्तर के पास ही 'केजुअल्टी विभाग' है जो ठीक जरूरत के अनुसार बना है और इसके भीतर जाकर आप अपनी आवश्यकता वाले विभाग में प्रवेश पा सकते हैं।

इस अस्पताल से सारे अंग लेकर लौटना असम्भव है। गुर्दे की चोरी एक आम बात होती है। क्योंकि जरूरत पड़ने पर एक गुर्दा लाखों रूपयों में बिकता है। नवजात शिशुओं की बदला–बदल होती है और कस कर होती है। सबसे ज्यादा सुख की बात यह है कि नवजात शिशुओं की अदला–बदली ही नहीं वरन् चोरी तक होती है। किसी गरीब स्त्री का शिशु किसी निःसन्तान और अमीर दम्पती को बहुत बड़ी कीमत पर बेच दिया जाता है कि उसका बच्चा तो जन्म लेने की प्रक्रिया में दिवंगत हो गया।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' से ली गई है। 'एक बड़े अस्पताल के बारे में' इस व्यंग्य के रचियता रविंद्र त्यागी हैं। इस पुस्तक का संपादन डॉ. सुरेश कुमार जैन ने किया है। इन पंक्तियों में लेखक ने अस्पतालों में फैले भ्रष्टाचार का वर्णन किया है। सभी अस्पताल ऐसे नहीं होते। परन्तु कुछ अस्पताल ऐसे हैं। जहाँ पर ऐसी स्थितियाँ पाई जाती हैं, जहाँ पर गरीब और भोले–भाले लोग धोखाधड़ी का शिकार होते हैं।

व्याख्या – लेखक ने एक अस्पताल के ऊपर व्यंग्य करते हुए अस्पतालों में छिपी कड़वी सच्चाइयों का वर्णन किया है। लेखक कहता है कि कई अस्पतालों में तो इलाज करवाने गये गरीब, भोले–भाले मासूम लोगों का ऐसा शोषण होता है कि उनके गुर्दे तक निकाल लिए जाते हैं। ताकि उन्हें लाखों रूपयों में बेचा जा सके। कुछ अस्पतालों में ही नवजात शिशुओं की भी अदला–बदली की जाती है और दुख की बात यह है कि अस्पताल में सिर्फ शिशुओं की अदला बदली ही नहीं होती बल्कि उनकी चोरी भी की जाती है। किसी गरीब स्त्री का नवजात शिशु अमीर और निःसन्तान दँपती को बहुत बड़ी रकम देकर बेच दिया जाता है और उस स्त्री को बताया जाता है कि जन्म लेते ही उसका शिशु मृत्यु को प्राप्त हो गया।

4.3.3 मैं धोबी हूँ

'मैं धोबी हूँ', भगवान भी धोबी है। मैं कपड़े धोता हूं, वे पाप धोते हैं। किन्तु वे पतित पावन कहलाते हैं, मैं सारे समाज की मलिनता का परिष्कार करके भी अछूत कहलाता हूँ। फिर भी, उन्होंने ही मुझे अपने –आप से भी पतित पावनता दी है। वे केवल उसी पतित या पापी का उद्धार करते हैं, जो उनकी शरण में पहुँच जाता है, पर मैं तो स्वयं घर–घर पहुँचकर लोगों का पतित्य दूर करके पवित्रता वितरित करता हूँ। तो भी मैं अस्पृश्य क्यों हूँ?

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध में से लिया गया है। इसके रचयिता शिवपूजन सहाय हैं। इसमें लेखक ने एक धोबी और प्रभु के एक जैसा कार्य करने पर भी उसमें आने वाली समानताएँ और असमानताएं प्रकट की हैं।

व्याख्या – इन पंक्तियों में लेखक कहता है कि वह एक धोबी है और भगवान भी धोबी समान है। धोबी का कार्य तो कपड़े धोना है। इसलिए वह हमेशा कपड़े धोता है और प्रभु का कार्य तो दुनिया के पाप धोना है। वह पापा

ही धोते हैं इसलिए उन्हें पतित पावन अर्थात पतितों का पवित्र करने वाला कहा जाता है। धोबी को मलाल है कि वह तो समाज का मैलापन उनके कपड़ों के माध्यम से धोता है। उनकी मलिनता को दूर करता है फिर भी अछूत कहलाता है। परन्तु धोबी का यह भी मानना है कि प्रभु ने उसे अपने–आपसे भी कहीं ज्यादा पतित पावनता प्रदान की है। प्रभु तो उसी पतित का उद्धार करते हैं जो उनकी शरण में जाता है पर धोबी तो स्वयं घर–घर जाकर लोगों के वस्त्र धोकर उन्हें पवित्रता प्रदान करता है। फिर भी वह अछूत क्यूँ कहलाता है। इस बात का धोबी को बहुत मलाल है।

शायद उसी समय नन्दन वन–विहारिणी अप्सराओं का झुण्ड सरोवर तट पर आ पहुँचा। मुझे बन्धी मुट्ठियों में साडियाँ दबाए अचेत पड़ा देख वे मेरे मुँह पर जल के छींटें देने लगीं। उन शीतल सुरभित विमल जल की फुहार से मेरी आंखें खुल पड़ीं। देखा, तो सामने सौन्दर्य की देवियां खड़ी मुस्करा रही थीं। मैं थराथरा उठा। मुट्ठियां अनायास ही खुल पडी, पर जबान न खुली।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध में से लिया गया है। इसके रचयिता शिवपूजन सहाय हैं। इसमें लेखक ने उस समय का वर्णन किया है। जब धोबी कहीं उर्वशी और रम्भा की साड़ियों और कुर्तियों को एकान्त में सूंघ रहा था।

व्याख्या – लेखक कहता है कि जब धोबी उर्वशी और रम्भा के वस्त्रों को सूंघने में व्यस्त था तो उसी समय वन में विचरण करने वाली अप्सराएं उसी सरोवर तट के किनारे आ पहुँचीं जहां धोबी उनके वस्त्रों की सुगन्ध में ऐसा डूबा पड़ा था कि उसे उनके आने का भी पता न चला। धोबी को साड़ियां मुट्ठी में दबाए अचेत अवस्था में पड़ा देख वे उसके मुँह पर जल के छींटें देने लगीं। ठण्डे पानी के छींटें मुँह पर पड़ते ही धोबी की आँखें खुल गयीं। उसने देखा उसके सामने सौन्दर्य की देवियाँ खड़ी मुस्करा रही थीं। धोबी डर से काँप उठा। उसकी मुट्ठियां तो अपने आप ही खुल गयीं, पर डर के मारे जुबान न खुल पायी।

तेरी पूर्वकृत सेवाओं का स्मरण कर केवल इतना ही दंड दिया जाता है कि पृथ्वी तल के मानव–समाज में तू अस्पृश्य समझा जाएगा, क्योंकि वासना तेरी नस–नस में बस गई है। किन्तु तेरे शुभ कर्म का जो गुण पवित्रीकरण है, उसके प्रभाव से तेरा दर्शन यात्राकाल में सदा मंगलप्रद माना जाएगा। देवलोक से तेरा निकाला जाना ही कल्याणकर है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध में से लिया गया है। इसके रचयिता शिवपूजन सहाय हैं। इसमें धोबी की विलासितापूर्ण मनोस्थिति को देखकर स्वर्ग की अप्सराओं द्वारा उसे स्वर्ग छोड़ने और अस्पृश्य होने का दंड दिया गया है।

व्याख्या – इन पंक्तियों में लेखक बताता है कि उर्वशी और रम्भा धोबी के इस विलासितापूर्ण व्यवहार को देखकर रोष में आ जाती हैं और उसे कहती हैं कि तुझे तो प्रभु ने पतित पावन बना कर शुभ कार्य सौंपा था परन्तु तू उसे त्याग कर मनोविकार का शिकार हो गया। परन्तु तूने इस कृत्य से ही अपनी श्रेष्ठ सेवाएं दी हैं। अतः उन्हें ध्यान में रखकर तुझे केवल इतना ही दंड दिया जाता है कि अब से तुझे पृथ्वीलोक के मानव–समाज में अछूत या अस्पृश्य माना जाएगा। क्योंकि वासना तेरी नस–नस में विराजमान हो गई है। किन्तु तेरे शुभ कार्य का जो गुण

पवित्रीकरण है उसके फलस्वरूप तेरा दर्शन यात्रा काल में सदैव मंगल प्रदान करने वाला माना जाएगा। परन्तु अब तुझे देव लोक में स्थान न मिलेगा। तेरा इस देवलोक से अब निकाला जाना ही कल्याणकारी है।

मेरा और भगवान का पुराना नाता है। रामावतार जब लंका विजय करके लौटे, रजक–रजकी का प्रणय–कलह सुनकर सीता जी को वनवासिनी किया। कृष्णावतार में पहले–पहल ननिहाल (मथुरा) आए, तो मेरे ही कपड़ों में सजकर मामा (कंस) के पास गए। भगवान ने मुझे अपना समकक्ष समझकर ही ऐसी तीव्र स्मृति शक्ति दी है कि हजारों कपड़ों के लेन–देन में कभी भूल नहीं होती।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य–पुस्तक 'गद्य फुलवारी' में संकलित 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध में से लिया गया है। इसके रचयिता शिवपूजन सहाय हैं। इन पंक्तियों में हमें धोबी अपनी तुलना प्रभु के साथ करता हुआ अपना यशोगान करता हुआ दिखाई देता है।

व्याख्या – इन पंक्तियों में लेखक बताता है कि धोबी किस प्रकार अपनी तुलना प्रभु के साथ करता है कि जब प्रभु रामावतार में लंका विजय कर वापिस लौटे तो धोबी औरर धोबिन की बातो को सुनकर ही उन्होंने सीता को संशय भरी जो बातें कहीं, तभी सीता को वन में जाना पड़ा और वह आगे कहता है कि जब प्रभु कृष्णावतार में थे तो वह जब सबसे पहले अपने ननिहाल अर्थात मथुरा आये तो उसके यानि धोबी के वेश में ही सज कर अपने मामा कंस के पास गये थे। धोबी अपना यशोगान करता हुआ यह भी कहता है कि भगवान ने मुझे अपने जैसा जानकर ही ऐसी तीव्र स्मरण शक्ति दी है कि वह हजारों कपड़ों का लेन देन करता है। पर कभी भी इन कपड़ों के लेन देन में उससे कोई भूल नहीं होती।

4.3.4 गप–शप

क्यों किसी का समय मैं लूँ? लेकिन इसी तरह की बातें हुईं। लौटा तो मन इतना भारी था कि कभी ऐसी गोष्ठी में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की। लेकिन इस समय जब ठण्डे दिल से सोच रहा हूँ तो लगता है कि वह सब बिल्कुल बेकार ही नहीं था। बेकार की बातों से ही तो किसी का चरित्र खुलता है? इतने लोगों के बारे में मैंने जो राय बनाई, वह क्या किसी सन्तुलित बात पर विवाद करने से हो सकती थी? आदमी का सच्चा रूप तो उसकी बेकार की बातों से खुलता है। नियमित और विवेकपूर्ण बातों से तो उनका बनावटी या ऊपरी रूप दिखाई पड़ता है। भाषण से उसकी बुद्धि और वक्तृता शक्ति का पता चलता है, असली आदमी कहीं भीतर ढँका रहता है। हृदय का धड़कता हुआ पंछी किसी भीतर पिंजरे में होता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक गद्य–फुलवारी में संकलित निबंध 'गप–शप' से लिया है। इसके रचियता नामवर सिंह हैं। इसमें लेखक ने तरह–तरह के लोगों द्वारा हाँकी गयी बेसिर पैर की गप्पों अथवा अर्थहीन बातों की सार्थकता पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि जब एक बार वह कहीं किसी गोष्ठी में गया तो वहाँ पर तरह–तरह के लोगों की बाँतें सुनकर उसे महसूस हुआ कि ऐसी अर्थहीन बातों को सुनने के लिए वह क्यों किसी का समय ले। पर ऐसा हो न पाया। लेखक ने सब की बातें सुनी और जब वह लौटकर आया तो उसका मन भारी था और उसने अपने मन

में प्रतिज्ञा की वह फिर कभी ऐसी गोष्ठियों में भाग नहीं लेगा। लेकिन फिर लेखक कहता है कि जब उसने ठण्डे दिल से सोचा तो उसे लगा कि वह सब निरर्थक वार्तालाप बिल्कुल बेकार ही नहीं था। क्योंकि इन बेकार की बातों से ही किसी का चरित्र भी खुलता है। लेखक का यह भी मानना है कि जितने लोगों की उसने निरर्थक बातें सुन–सुनकर उनके बारे में जो राय बनायी है क्या वह किसी सन्तुलित बात पर विवाद करने से बन सकती थी। आदमी का असली और सच्चा रूप तो उसकी बेकार की बातों से ही खुलता है। ज्ञानवान या विवेकपूर्ण बातें करने से तो उनका बनावटी या ऊपरी रूप ही दिखाई पड़ता है और उसके बोलने से भी उसकी बुद्धि और बोलने की शक्ति का पता चलता है और उसका असली रूप कहीं अंदर ही छिपा रहता है। जैसे हृदय का धड़कता हुआ पंछी किसी भीतर पिंजरे में छिपा रहता है।

बात तो बात, निरर्थक शब्द भी बेकार नहीं होते। वैयाकरण केवल सार्थक शब्दों के बच्चो खिलाते रहें, लेकिन क्या आदमी निरर्थक शब्दों का प्रयोग छोड़ सकता है? सुनते हैं, शब्द और अर्थ विवाहित ही पैदा हुए हैं और आजीवन दो रहते हुए भी एक रहने का व्रत लेते हैं। परन्तु उनमें भी कुछ तलाक देने वाले होते हैं और उनका असली भेद उसी दिन खुलता है, जब दोनों एक–दूसरे को तलाक देकर अलग हो जाते हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक गद्य–फुलवारी में संकलित निबंध 'गप–शप' से लिया गया है। इसके लेखक नामवर सिंह हैं। इसमें लेखक ने यह बताया है कि सार्थक शब्दों के साथ–साथ, निरर्थक शब्दों का भी अपना महत्व होता है। उन्हें हम अर्थहीन या बेकार नहीं कह सकते।

व्याख्या – इन पंक्तियों में लेखक कहता है कि बात तो बात, अर्थहीन शब्द भी कभी बेकार नहीं होते। व्याकरण अगर बना है हमेशा सार्थक शब्दों का प्रयोग करने के लिए तो क्या हम निरर्थक शब्दों का प्रयोग करना छोड़ सकते हैं? कभी भी नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता। अक्सर सुना जाता है कि शब्द और अर्थ विवाहित दंपती की तरह साथ ही रहते हैं और वे आजीवन दो होते हुए भी एक रहने का व्रत ले लेते हैं। परन्तु इन्हीं में कुछ शब्द–अर्थ ऐसे भी होते हैं जो तलाक की संभावना लिए होते हैं। और उनका असली रूप या भेद तब खुलता है जब वे दोनों एक–दूसरे को तलाक देकर अलग हो जाते हैं अर्थात उनका आपस में सम्बन्ध–विच्छेद हो जाता है।

पाठयक्रम की पुस्तकें देखकर किसी विद्यार्थी का वास्तविक रूप नहीं जाना जा सकता। उसे वह रखता है, क्योंकि इन्हें उसे रखना पड़ता है। इससे अधिक से अधिक यही पता चल सकता है कि उसका ध्यान पाठय–पुस्तकों के संग्रह की ओर कितना है कि पाठयक्रम की दृष्टि से बेकार कहा जाएगा। नियमों की सीमा से चले हुए आदमी नहीं पहचाना जाता, नियमों को तोड़ने अथवा उनकी सीमा समाप्त होने पर पहचाना जाता है। इसीलिए विद्यार्थी जीवन में सभी विद्यार्थी आदमी के रूप में बहुत कुछ एक से लगते हैं, परन्तु उन ढाचों से बाहर निकलते ही अलग हो जाते हैं। कौन कहता है कि बेकार की पुस्तक बेकार? वही तो आदमी के सच्चे रूप की पुस्तकें हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक गद्य–फुलवारी में संकलित निबंध 'गप–शप' से लिया गया है। इसके रचियता लेखक नामवर सिंह जी हैं। इन पंक्तियों में उन्होंने बताया है कि किसी विद्यार्थी की वास्तविक

पहचान उसके पाठयक्रम की पुस्तकों से नहीं होती वरन पाठयक्रम के अतिरिक्त उसके द्वारा संग्रह की हुई पुस्तकों से होती है। वैसे ही आदमी की पहचान भी नियमों से बंध कर नहीं, नियमों को तोड़ने से होती है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि मात्र पाठय पुस्तक की पुस्तकें देखकर किसी विद्यार्थी की प्रतिभा का पता नहीं चलता क्योंकि उन्हें रखने या पढ़ने के लिए वह बाध्य होता है। उसकी असली प्रतिभा का परिचय तो उसके द्वारा पाठयक्रम के अतिरिक्त संग्रह की हुई पुस्तकों से होता है जिन्हें पाठयक्रम की दृष्टि से बेकार कहा जाता है। जो कि उसके पाठयक्रम की पुस्तकों से भिन्न होती हैं। ऐसे ही नियमों की सीमा का पालन करते हुए आदमी की पहचान नहीं होती क्योंकि सभी लोग नियमों का पालन करते हैं। यहाँ पर लेखक का यह मानना है कि आदमी की सही पहचान तो नियमों को तोड़ने पर होती है। इसलिए विद्यार्थी जीवन में तो सभी विद्यार्थी आदमी के रूप में प्रायः एक जैसे ही लगते हैं परन्तु विद्यार्थी जीवन के ढांचे से बाहर निकलते ही सब अलग–अलग हो जाते हैं। इसी तरह कौन कहता है कि बेकार की पुस्तक ही तो आदमी के असली स्वरूप की पुस्तकें होती हैं।

किसी समाज का पता उसके धनाढय व्यापारियों, सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को देखकर उतना नहीं चलता जितना उनके बेकार आदमियों को देखकर। बेकार घूमने वाले आदमी ही किसी समाज की व्यवस्था का सच्चा हाल प्रकट करते हैं। आज देश में लाखों किसान–मजदूर बेकार पड़े हैं, कितने ही शरणार्थी आश्रयहीन की दशा में घूम रहे हैं, बेकारी की दशा में लेखकों की कलमें शिथिल हो रही हैं, खून की स्याहियाँ सूख रही हैं, सासों के तार–तार हो रहे हैं – हिन्दुस्तान इसमें छिपा है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक गद्य–फुलवारी में संकलित निबंध 'गप–शप' से लिया गया है। इसके लेखक नामवर सिंह हैं। इन पंक्तियों में लेखक का मानना है कि किसी भी समाज की असली पहचान उसके धनी लोगों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों से नहीं होती बल्कि वहाँ के श्रमिकों, बेरोजगारों एवं निर्धनों से होती है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि किसी भी समाज का पता वहाँ के धनी लोगों, व्यापारियों, अधिकारियों अथवा कर्मचारियों को देख कर नहीं लगता अपितु वहाँ के बेकार लोगों को देखकर लगता है। जैसे वहां के बेरोजगार, निर्धन, मजदूर और श्रमिक लोग किस स्थिति में है। ऐसे लोग ही वास्तव में किसी सभ्य समाज का आईना होते हैं। देश में कितने ही लाखों किसान–मजदूर बेकार पड़े हैं। उनके पास करने के लिए काम ही नहीं है। कितने ही बेसहारा लोग आश्रय प्राप्त करने के लिए भटक रहे हैं। ऐसी स्थिति में लेखकों की कलमें भी बेकार पड़ी हैं अर्थात उन पर भी विराम लग चुका है वे भी शिथिल पड़ी हैं अर्थात कुछ नहीं लिख रही। खून की स्याहियाँ भी सूख रही हैं। अर्थात देश का जवान भी अपने सामर्थ्य का सदुपयोग नहीं कर पा रहा। ऐसे लोगों की साँसें भी थक गयी अर्थात गरीबी, बदहाली, बेकारी के कारण यह वर्ग शोचनीय जीवन जी रहा। असली हिन्दोस्तान तो वास्तव में इन्हीं लोगों के बीच में छिपा हुआ है।

4.4 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

(i) गद्यफुलवारी– डॉ. शहाबुद्दीन शेख, कश्मीरी गेट दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2012

B.A. HINDI **UNIT-II** **Lesson No. 5**

COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

निर्धारित लेखों में व्यंग्य योजना

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 निर्धारित लेखों में व्यंग्य योजना

5.3.1 'सदाचार का ताबीज' व्यंग्य में व्यंग्य योजना

5.3.2 'एक बड़े अस्पताल के बारे में' व्यंग्य में व्यंग्य योजना

5.3.3 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध में व्यंग्य योजना

5.3.4 'गप–शप' निबंध में व्यंग्य योजना

5.4 निष्कर्ष

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

5.1 उद्देश्य – प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थी निर्धारित लेखों में गढ़ी गयी व्यंग्य योजना से परिचय प्राप्त करेंगे। इस अध्याय में यह बताया गया है कि कैसे सामान्य ढर्रे से हटकर लेखक अपनी बात व्यंग्य के माध्यम से एक गहरे और पैने कटाक्ष के साथ करता है।

5.2 प्रस्तावना – व्यंग्य शब्द का अर्थ अंग्रेजी के 'सैटायर' शब्द से लिया गया है। आज व्यंग्य शब्द का प्रयोग समाज में छिपी बुराइयों और विसंगतियों को उजागर करने के लिए किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इनमें निहित व्यंग्य का परिचय इनकी व्यंग्य योजना के माध्यम से प्राप्त करेंगे।

5.3 निर्धारित लेखों में व्यंग्य योजना

5.3.1 'सदाचार का ताबीज' व्यंग्य में व्यंग्य योजना

'सदाचार का ताबीज' व्यंग्य, व्यंग्य साहित्य के प्रमुख रचनाकार हरिशंकर परसाई द्वारा रचित व्यंग्यात्मक रचना है। इस रचना में लेखक का मूल उद्देश्य भ्रष्टाचार की मूल व्याप्ति तथा उसके उन्मूलन पर व्यंग्य के माध्यम से कटाक्ष करना है। अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से इन्होंने समाज में फैली सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार किया है। इनके व्यंग्य तीखे और मार्मिक भी हैं।

कई बार लेखक जो कहना चाहता है। उसे सीधे–सीधे शब्दों में न कहकर उसके लिए एक परिस्थिति, एक कहानी बुनता है। जिसमें व्यंग्य के माध्यम से संदेश दिया जाता है। वर्तमान समाज और शासन–व्यवस्था भ्रष्टाचार में लिप्त है। इस बात को लेखक ने एक राजा और उसके दरबारियों की चालों पर आधारित कथ्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। राजा अपने देश में बढ़ गए भ्रष्टाचार को दूर करने का उपाय माँगता है और दरबारी इस उपाय को दूर करने के लिए भी अपना स्वार्थ देखते हैं। वह एक साधु को पकड़ कर ले आते हैं और उसके द्वारा बनाए गए ताबीज को राजा को दिखाकर भ्रष्टाचार दूर करने का उपाय राजा को बताते हैं और उससे अपना कमीशन निर्धारित करते हैं। इस व्यंग्य में कथात्मकता का यह गुण पाठक को अपने साथ बाँधे रखता है।

व्यंग्य का प्रमुख उद्देश्य अपनी बात को बड़े तीखेपन और मार्मिकता से कहना होता है। हरिशंकर परसाई द्वारा रचित इस व्यंग्य में लोकतन्त्र और राजतन्त्र में आई भ्रष्टाचार की गहरी जड़ों पर प्रकाश डाला गया है। मंत्री परिषदें कैसे कार्य करती हैं, भाई–भतीजावाद और चापलूसी कैसे शासन व्यवस्था में घर कर गई है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें इस व्यंग्य में मिलता है। जैसे राजा के दरबारी राजा को यथार्थ स्थिति बताने के बजाए चापलूसी करने में विश्वास रखते हैं। भ्रष्टाचार को देखते हुए भी वह देख नहीं पा रहे हैं क्योंकि उनकी दृष्टि देशहित से बढ़ कर स्वहित में लगी हुई है। राजा द्वारा उन्हें यह पूछने पर कि भ्रष्टाचार कहाँ पर है। वह कैसा होता है। वे उसे यह जवाब देते हैं, "हजूर वह हमें नहीं दिखेगा। सुना है, वह बहुत बारीक होता है। हमारी आँखें आपकी विराटता की इतनी आदी हो गई है कि हमें बारीक चीज नहीं दिखती। हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो उसमें हमें आपकी दी छवि दिखेगी, क्योंकि हमारी आँखों में तो आपकी ही सूरत बसी है।

एक समय था जब राजाओं के दरबार में दरबारी संस्कृति हुआ करती थी। राजा की झूठी प्रशंसा और चापलूसी कर दरबारी अपना स्वार्थ सिद्ध किया करते थे।वर्तमान लोकतन्त्र और व्यवस्था में ऐसे ही स्वार्थी चापलूसी और भ्रष्ट लोगों से भरी पड़ी है। विशेषतया सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार अधिक व्याप्त है यहाँ पर छोटे से छोटा कार्य करवाने के लिए भी बाबू लोागों को रिश्वत दिए बिना काम नहीं चलता। हमारी वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में आज भी कहीं दरबारी संस्कृति अपनी पैंठ बनाए हुए हैं। जिसमें अपनी पहुँच के द्वारा या भाई–भतीजावाद के द्वारा अपने काम करवाए जाते हैं। राजा के चापलूस दरबारी भी साधू जैसे किसी व्यक्ति को फायदा पहुँचाने के लिए उसे भ्रष्टाचार दूर करने वाला चमत्कारी बाबा बता कर राजा के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं और उससे अपनी कमीशन निर्धारित कर लेते हैं।

इस व्यंग्य में लेखक ने भ्रष्टाचार के बहुत सारे ऐसे रूपों को प्रस्तुत किया है जो सामने तो दिखाई नहीं देते

परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से जगह–जगह विद्यमान हैं। व्यवस्था से जुड़े लोग कमीशन खाने के लिए ठेकेदारों से झूठे बिल पास करवाते हैं। जैसे राजा द्वारा बुलाए गए विशेषज्ञ उसे यह बताते हैं कि "पिछले माह इस सिंहासन पर रंग करने के लिए जिस बिल का भुगतान किया गया है, वह बिल झूठा है। यह वास्तव में दुगने दाम का है। आधा पैसा बीच वाले खा गए। आपके पूरे शासन में भ्रष्टाचार है और वह मुख्यतः घूस के रूप में है। यहाँ पर लेखक ने भ्रष्टाचार की अगोचरता या अप्रत्यक्षता को ठेकेदारी प्रथा में गोचर कर दिखाया है। ठेकेदारी प्रथा में शासन व्यवस्था से जुड़े लोग और सरकारी कर्मचारी भी पूरी तरह से मिले होते हैं। उन्हें भी फायदे के रूप में कमीशन या अन्य कोई लाभ मिल ही जाता है।

लेखक ने इस व्यंग्य में भ्रष्टाचार के एक और नग्न तथा सत्य यथार्थ को भी प्रस्तुत किया है। यह सत्य व्यवस्था की असमान विसंगतियों को भी दर्शाता है। साधु द्वारा दिए गए सदाचार की ताबीज से कर्मचारी सुधर तो जाते हैं परन्तु जैसे ही महीने का आखिरी दिन आता है कर्मचारियों की जेबें खाली हो जाती हैं। महीने के शुरू में जो कर्मचारी आसानी से रिश्वत लेने से इनकार करता है वही महीने के अंत में रिश्वत लेने के लिए मजबूर हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राजा के कर्मचारियों को इतना वेतन नहीं मिलता कि उसका पूरा महीना अच्छी तरह से गुजर जाए। अगर उसे मिलने वाले वेतन से उसका महीना अच्छी तरह गुजर जाए तो वह रिश्वत नहीं लेगा। जिससे भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा नहीं मिलेगा। यही स्थिति अगर वर्तमान कर्मचारियों के साथ भी रहे तो यही नतीजा होगा। इसलिए व्यवस्था समानता का भाव लेकर चले तो भ्रष्टाचार फैलने की सम्भावना कम हो सकती है।

निष्कर्ष – इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत व्यंग्य में लेखक का उद्देश्य राजा और उसके दरबारियों के माध्यम से वर्तमान में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या पर प्रकाश डाला है।

5.3.2 'एक बड़े अस्पताल के बारे में' व्यंग्य में व्यंग्य योजना

रविन्द्र त्यागी द्वारा रचित प्रस्तुत व्यंग्य का उद्देश्य अस्पतालों में फैली अव्यवस्था व अराजकता पर प्रकाश डालना है। लेखक ने यहां पर डाक्टरों की लापरवाहियों, मरीजों की बदहाल अवस्था तथा अस्पतालों की खस्ता हालत पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया है।

लेखक का मानना है कि इस अस्पताल में डाक्टर और छात्र–डाक्टर मरीजों का इलाज करने की भावना से नहीं आते बल्कि मोटी–मोटी किताबें पढ़ने से पैदा हुई उब को दूर करने आते हैं। रोगियों की देह से मनचाहा खिलवाड़ करते हैं। ऑपरेशन भी करते हैं तो गैर–जिम्मेदाराना रवैये से और जब किसी मरीज की मौत हो जाती है तो वह गम भुलाने के लिए वापिस कॉलेज चले जाते हैं। जहाँ दवा की जगह छुपा कर रखी दारू पी जाते हैं। दारू पीने के बाद यह गैर–जिम्मेदार डॉक्टर कॉलेज की छात्राओं को परिवार–नियोजन के तरीके समझाते हैं। अस्पताल के सभी विभागों में डाक्टरों के बजाए छात्र–डॉक्टर होते हैं। जो मेंढक की तरह मरीजों को उलटते–पुलटते हैं और इन डाक्टरों के हाथों में अधिकतर मरीज अपनी बीमारी का ज्ञान हुए बिना ही मर जाते हैं।

लेखक कहता है कि अस्पताल में डॉक्टर अक्सर अनुपस्थित मिलते हैं। अस्पताल में करोड़ो रूपए की मशीनें हैं परन्तु उनका उपयोग नहीं होता। डाक्टर विदेशों के चक्कर लगाते रहते हैं। अस्पताल के महत्वपूर्ण विभागों में कोई

बड़ा डाक्टर नहीं मिलता। मरीजों को छात्र–डाक्टर के हवाले कर दिया जाता है। वे अपनी मर्जी से मरीजों का इलाज करते रहते हैं। कोई उनको पूछने वाला नहीं है।

अस्पताल में अव्यवस्था फैली रहती है। डाक्टर भी उतनी ही लापरवाही से कार्य करते हैं। मरीजों के सिरहाने पड़ा आक्सीजन का सिलेंडर खाली हो जाता है। और किसी को पता भी नहीं चलता। नर्सें और डाक्टरानियाँ मेकअप से सजी–संवरी रहती हैं। स्त्री–रोग विशेषज्ञ विभाग में पुरुष डाक्टर दिखाई देता है। गुप्त–रोग विभाग में काम करने वाले डाक्टर सड़े दाँत की अपेक्षा अच्छे भले दाँत को निकाल देते हैं। दाई आँख की जगह बाई आँख का ऑपरेशन कर दिया जाता है। बिगड़ी हुई मशीनों की मरम्मत नहीं होती। अस्पताल की नई इमारत से झड़ता हुआ पलस्तर मरीजों पर गिरता रहता है।

अस्पताल नित–प्रतिदिन होने वाली हड़तालों के कारण बन्द ही रहता है। यह हड़ताल कभी निचले वर्ग के कर्मचारी करते हैं तो कभी डॉक्टर तो कभी नर्सें। बारी–बारी सभी लोग हड़ताल करते हैं। एक साथ नहीं करते। मजे की बात यह है कि हड़तालों के कारण भी बड़े अजीब–अजीब रहते हैं। कभी यह कारण व्यक्तिगत भी होते हैं और कभी सार्वजनिक भी।

इस अस्पताल में इन्सानी अंगों की चोरी भी होती है। गुर्दे की चोरी आम बात है। गरीब लोगों के गुर्दे को चुरा कर लाखों रूपयों में बेचा जाता है। इसके अतिरिक्त नवजात शिशुओं की अदला बदली भी होती है और चोरी भी होती है। गरीब औरतों के बच्चों को अमीर निःसन्तान दम्पतियों को पैसे लेकर बेच दिया जाता है और गरीब औरतों को बता दिया जाता है कि उसका बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ था। गरीब माँ कलेजे पर पत्थर रखकर लौट जाती है और अस्पताल में यह सिलसिला चलता रहता है।

अक्सर अस्पताल स्वास्थ्य विभाग के नियंत्रण में रहते हैं। अस्पताल में कोई अव्यवस्था गैर–जिम्मेदाराना हरकत होती है तो स्वास्थ्य मंत्री उस पर कार्यवाही करते हैं। परन्तु इस अस्पताल में स्वास्थ्य मंत्री कुछ भी होने पर कार्यवाही नहीं कर सकते क्योंकि अस्पताल के डॉक्टर और कर्मचारी स्वास्थ्य मंत्री के रिश्तेदार या जान–पहचान के लोग हैं। सब कुछ जानते हुए भी स्वास्थ्य मंत्री अस्पताल की कार्य–प्रणाली में दखल नहीं देते। अस्पताल के ठीक तरह से न चलने के पीछे कभी वह किसी विरोधी दल या कभी विदेशी हाथ के होने की बात करते हैं तो कभी अन्य सरकारी संस्थाओं में फैली अव्यवस्था की बात करते हैं।

निष्कर्ष – इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रस्तुत व्यंग्य में लेखक का उद्देश्य अस्पतालों में फैली विसंगतियों, विषमताओं और अव्यवस्था व लापरवाही के तथ्यों को बड़ी कुशलता से उभारना है।

5.3.3 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध में व्यंग्य योजना

'मैं धोबी हूँ' निबंध हिन्दी साहित्य के रचनाकार शिव पूजन सहाय द्वारा रचित है। इस निबंध में लेखक का मूल उद्देश्य धोबी की कर्तव्य भावना को भगवान के समकक्ष रखते हुए उसके मनोविकारों का वर्णन करना है। इस निबंध की व्यंग्य योजना में लेखक धोबी की मानसिकता हमारे समक्ष उजागर करता है कि कैसे वह अपने वस्त्र धोने वाले कार्य को भगवान के अपने भक्तों के पाप धोने वाली पावन कार्य के साथ जोड़ता है। वास्तव में इस निबंध में लेखक

की समाज–सुधार की भावना दृष्टिगोचर होती है। समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों और छूआछूत की भावना को उन्होंने व्यंग्यात्मक कटाक्षों से प्रकट किया है।

इसमें लेखक ने एक धोबी की कर्त्तव्य–भावना का चित्रांकन करते हुए उसे पतितपावन बताया है। साथ ही पतितपावन होते हुए भी समाज के लोग उसे अछूत अस्पृश्य समझते हैं। इसके प्रति व्यंग्य प्रकट किया है। धोबी और भगवान दोनों में एक समानता यह है कि एक कपड़े धोता तो दूसरे पाप धोते हैं किंतु विषमता यह है कि प्रभु पतितपावन कहलाते हैं और धोबी को लोग अछूत कहते हैं। धोबी के अछूत होने का एक पौराणिक कारण है। ब्रह्मा ने धोबी को पैदा कर उसे इन्द्रलोक में इन्द्र के कपड़े धोने का कार्यभार सौंपा। वह वहाँ के नन्दन वन के कमल कूमुद मधुप–मराल सेवित सरोवरों में कपड़े धोने का कार्य करने लगा। उनमें से कमल की खुशबू आती थी। इन्द्र देवता उनके हाथ की सफाई से बहुत खुश हुए। अप्सराएँ उनकी ओर आकर्षित होने लगीं। अब उसके घाट पर रंग–बिरंगे कपड़े इकट्ठे होने लगे। ऐसी महीन साड़ियाँ जो मुट्ठी में समा जाती थीं उनके निचोड़ने में उसे ऐसी मधुर–सी अनुभूति होती जो गरीबों का खून चूसने वाले सूदखोरों को भी नहीं होती होगी। धीरे–धीरे वह घोर वसन व्यसनी हो गया।

एक बार धोबी उर्वशी और रम्भा की साड़ियों और कुर्तियों को एकांत में सूंघ रहा था। वह उनकी सुरभि की महक से मदमस्त हो गया। वह उन्हें बार–बार मुट्ठियों में कसकर दबाने और झकझोरने लगा। इसी तरह चूमते और सूंघते–सूंघते वह साड़ियों के गट्ठर पर सो गया। उसी वक्त अप्सराओं का झुंड सरोवर तट पर आ पहुँचा। धोबी को उस अवस्था में अचेत पड़ा देखकर उन्होंनें उसके मुँह पर जल के छींटे मारे उसकी आंखें खुल गई। वह सौन्दर्य की देवियों को सामने देखकर अचंभित हो गया। उनमें से यह देखकर मेनका ने कहा कि यह इन्द्र महाराज का सेवक है। इसलिए विलासिता इसको भी लग गई है। घृताची देवी ने कहा कि यह हमारे कपड़े अपवित्र मनन से धोता एवं काम में लाता है, इसको दंड मिलना चाहिए। यह सुनते ही उर्वशी, रंभा आदि की साड़ियां और कुर्तियां धोबी के हाथों से छूटकर नीचे गिर गईं तो उन्होंने उसे शाप देकर कहा कि तू स्वर्गभ्रष्ट होकर मृत्युलोक में अपनी वासनाएं पूर्ण कर क्योंकि देवलोक में वासनाओं का गुपचुप खेल नहीं चलता यहाँ तो जालसाजों की स्वच्छंद लीला होती है। तुझमें कपड़ों की मलिनता दूर करने की शक्ति नहीं यह तो वरुणदेव, पवनदेव और सूर्यदेव की किरणों के प्रताप से होता है। तू कर्त्तव्यच्युत अपराधी है। विधाता ने तुझे पतितपावन बनाकर शुभकार्य सौंपा किंतु तू मनोविकार का शिकार हो गया। इसलिए तेरी पूर्व सेवाओं को ध्यान में रखकर केवल इतना दंड दिया जाता है कि तू पृथ्वीतल के मानव–समाज में अस्पृश्य समझा जाएगा।

इस प्रकार धोबी को उसकी करनी का फल मिला उसे गधे पर चढ़ाकर सुरलोक से निकाल दिया। वह गधा उसकी सनातन सवारी है।

धोबी और भगवान का प्राचीन संबंध है। रामावतार जब लंका विजय करके वापस आये तो उन्होंने रजक–रजकी का प्रणय कलह सुनकर सीताजी को वनवासिनी कर दिया। यहाँ पर व्यंग्य के माध्यम से लेखक कानों सुनी बात पर यकीन न करने का संदेश देता है। यहां पर लेखक अपने उससे छूआछूत वाले रवैये पर व्यंग्य करता हुए कहता है कि कैसे कृष्ण ने उसकी ही वेशभूषा धारण की थी। भगवान ने धोबी को अपना समकक्ष समझा है इसलिए उसे ऐसी

तीव्र स्मरण शक्ति दी है कि हज़ारों कपड़ों के लेन–देन में भी कभी भूल नहीं होती। हां; मधु का पान कर कभी'–कभी उसे गलती की आशंका जरूर होती है।

धोबी की सामाजिक महिमा निराली है। एक रानी और सेठानी की साड़ी और कंचुकी दरस–परस या तो राजा या सेठ को नसीब होता है या उसे। सौंदर्य से परिपूर्ण युवतियों की साड़ियों और कुर्तियों से उसका घर भरा रहता है। वह उन्हें केवल धोता ही नहीं बल्कि बिछाता और पहनता भी है। उस समय वह तो कवेल रजक ही रहती है किंतु उसकी रजकी और रज्जक बन जाती है। यहाँ पर लेखक पूंजीपति वर्ग पर कटाक्ष करता हुआ दिखाई देता है।

5.3.4 'गप–शप' निबंध में व्यंग्य योजना

'गप–शप निबंध आधुनिक हिंदी साहित्य के आलोचक नामवर सिंह द्वारा रचित है। इसकी व्यंग्य योजना में लेखक ने मानव समाज और जीवन में 'गप–शप' की महिमा का गुणगाण किया गया है। इस निबंध में अपनी व्यंग्य भावना के अंतर्गत लेखक का यह मानना है कि लोग सार्थक बातों की जगह जब निरर्थक बातें करते हैं तो उनका भी अपना विशेष महत्व होता है।

'गप–शप' निबन्ध आधुनिक हिंदी साहित्य के आलोचक नामवर सिंह द्वारा रचित है। इस निबन्ध में लेखक ने मानवीय जीवन में गप–शप की महिमा का गुणगान किया है। मानवीय जीवन में गप–शप का कोई निश्चित विषय नहीं होता। 'गप–शप' में ठीक उसी तरह का विषय होता है जैसे केले के पात–पात में पात तथा बात–बात में बात का।

लेखक व्यंग्य करता हुआ कहता है कि बेकार की बातों से ही किसी मनुष्य का चरित्र खुलकर सामने आता है। विवेकपूर्ण बातों से तो केवल उसका वनावटी या बाह्य रूप ही प्रकट होता है। भाषण से उसकी बुद्धि और वक्तृता शक्ति का बोध होता है। काम की बातों से काम का बोध होता है, आदमी का नहीं। उसका बोध तो बेकार की बातों से ही होता है। बात तो बात निरर्थक शब्द भी बेकार नहीं होता। मनुष्य इनका प्रयोग कभी निरंतर करता रहता है। सार्थक शब्दों की मौलिकता एवं वास्तविकता का बोध निरर्थक शब्दों से ही होता है। काम का पत्र लिखने से किसी को तृप्ति नहीं होती। आदमी कभी–कभी निरुद्देश्य तथा निप्रयोजन पत्र लिखता है। ऐसे ही पत्रों से आदमी, उतरता और खेलता है। भूमि की सार्थक रेखाएँ ओवरसियर और इंजिनियर आदि के द्वारा खींची जाती हैं। किंतु जब कभी मनुष्य का मन और दिल उदास हो तो वह निरर्थक रेखाएँ खींचता है। ये रेखाएँ भी अपने आप में सार्थक होती हैं किंतु कोई हृदयहीन मनुष्य इन्हें निरर्थक मानते हैं। इन रेखाओं से मनुष्य की तत्कालीन मनःस्थिति का पता चल सकता है। सार्थक रेखाएँ तो केवल त्रिभुज, मकान या मॉडल बना सकती हैं किसी आदमी का निर्माण नही कर सकतीं।

लेखक व्यंग्य करता हुआ कहता है कि पाठ्यक्रम की पुस्तकें देखकर किसी विद्यार्थी का वास्तविक रूप नहीं जाना जा सकता क्योंकि यह सब रखना उसकी मजबूरी होता है। अक्सर हम किसी के पाठ्यक्रम की पुस्तक और उसके पढ़ने वाले स्थान से उसके स्तर का अंदाजा लगाते हैं पर उसका वास्तविक रूप उन पुस्तकों के संग्रह से जाना जा सकता है जो उसके पाठ्यक्रमों में अलग है। इस प्रकार नियमों की सीमा में चलते हुए आदमी को नहीं पहचाना जा सकता। आदमी के रूप को तो केवल नियमों को तोड़ने पर ही पहचाना जाता है। बेकार की पुस्तकें बेकार नहीं

होतीं बल्कि वे तो आदमी के सच्चे रूप का आइना हैं। विद्यार्थी द्वारा कॉलेंज की फीस जमा करने, पुस्तकें खरीदने अथवा अध्यापक द्वारा बीमा किश्त जमा करने से उसको जीवन का बोध नहीं होता। मेस के निश्चित मासिक खर्च से जीभ का रहस्य नहीं खुलता, उसका रहस्य फुटकर जलपानों से ही खुलता है। आदमी भी अपव्यय या आकस्मिक काम से ही पहचाना जाता है। टाइम टेबल में बंधे आदमी का कुछ पता नहीं चलता उसका पता तो बंधन तोड़ने पर ही होता है। घर से बाहर पड़े बेकार के कागज़ भी मनुष्य के जीवन का रहस्य खोलते हैं।

इस निबंध में लेखक की व्यंग्य योजना यहां पर एक ऐसा चित्र खींचती है जहां समाज का बोध धनी लोग, अधिकारियों, कर्मचारियों को देखकर होता है। लेखक का मानना है कि यह बोध तो इन्हें देखने की अपेक्षा बेकार आदमियों को देखकर होता है। लाखों किसानों, मजदूरों, बेरोजगार लोगों, आश्रयहीन शरणार्थियों में ही असली हिंदुस्तान छिपा है। समाज का असली चित्रण आज़ाद कलम करती है। इस प्रकार इस निबंध में लेखक की व्यंग्य योजना अपनी बात सार्थक तरीके से उजागर करती है।

5.4 निष्कर्ष – इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में हमने निर्धारित लेखों में व्यंग्य योजना का परिचय प्राप्त किया।

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) 'सदाचार का ताबीज' में प्रयुक्त व्यंग्य–योजना पर प्रकाश डालें।

____

____

____

____

____

(ii) 'एक बड़े अस्पताल के बार में' की व्यंग्य–योजना पर दृष्टि डालें।

____

____

____

____

____

(iii) व्यंग्य की दृष्टि से 'मैं धोबी हूँ' निबन्ध पर चर्चा करें।

____

____

____

____

____

(iv) 'गप–शप' निबन्ध की व्यंग्य–योजना पर चर्चा करें।

____

____

____

____

____

5.6 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

(i) गद्यफुलवारी– डॉ. शहाबुद्दीन शेख, कश्मीरी गेट दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2012

(ii) गद्य की नई विधाओं का विकास– माजदा असद, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।

(iii) निबन्धों की दुनिया– हरिशंकर परसाई।

B.A. HINDI **UNIT-II** **Lesson No. 6**

COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

निर्धारित व्यंग्य एवं निबन्धों की शैली

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 निर्धारित व्यंग्य एवं निबन्धों की शैली

- 6.3.1 हरिशंकर परसाई की शैली
- 6.3.2 रविन्द्र त्यागी की शैली
- 6.3.3 शिवपूजन सहाय की शैली
- 6.3.4 नामवर सिंह की शैली

6.4 निष्कर्ष

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य निर्धारित पाठों में लेखकों की शैली से अवगत कराना है।

6.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में हम लेखकों की शैली प्रक्रिया का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

6.3 निर्धारित व्यंग्य एवं निबन्धों की शैली

6.3.1 हरिशंकर परसाई की शैली

हास्य व्यंग्य लेखक अधिकतर मुहावरों और लोकोक्तियों के माध्यम से अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। हरिशंकर परसाई जी की भाषा में व्यंग्य की प्रधानता है उनकी भाषा सामान्य संरचना के कारण विशेष क्षमता रखती है। उनके एक–एक शब्द में व्यंग्य के तीखेपन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लोक प्रचलित हिन्दी के साथ–साथ उर्दू, अंग्रेज़ी शब्दों का भी उन्होंने खुलकर प्रयोग किया है। परसाई जी की अलग–अलग रचनाओं में ही नहीं, किसी एक रचना में भी भाषा, भाव और भंगिमा के प्रसंगानुकूल विभिन्न रूप और अनेक स्तर देखे जा सकते हैं। प्रसंग बदलते ही उनकी भाषा शैली में जिस सहजता से वांछित परिवर्तन आते–जाते हैं और उससे एक निश्चित व्यंग्य उद्देश्य की भी पूर्ति होती है। उनकी यह कला चकित कर देने वाली है। वह इस प्रकार के वाक्य–विन्यास गढ़ते हैं जिसे पढ़ कर हंसी भी आती है और विकृति के प्रति वितृष्णा भी जागती है। जैसे – "भ्रष्टाचार मिटाने के लिए महाराज को व्यवस्था में बहुत परिवर्तन करने होंगे। एक तो भ्रष्टाचार के मौके मिटाने होंगे। जैसे ठेका है तो ठेकेदार है। और ठेकेदार हैं तो अधिकारियों को घूस है। ठेका मिट जाए तो उसकी घूस मिट जाए।" परन्तु घूस कौन छोड़ता है? इसलिए भ्रष्टाचार की निरंतर जय है।

परसाई जी के व्यंग्य लेखों की भाषा अत्यन्त प्रभावशाली होती है। वे भावानुकूल भाषा का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। 'निंदा रस' में उनका मित्र कितनी तत्परता और तेजी से मिलने आता है और उन्हें गले लगाता है, इसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं, "वह तूफान की तरह कमरे में घुसे, 'साइक्लोन' की तरह मुझे अपनी भुजाओं में जकड़ लिया" – इस कथन में तूफान की तीव्रता और वात्यचक्र की आत्मसात् कर लेने की क्षमता की ओर संकेत मनोरंजक है। व्यंग्य लेखक विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग करता है क्योंकि ऐसा करने से व्यंग्य की तीव्रता स्पष्ट होती है। उनकी एक रचना की यह पंक्तियां कि आना–जाना तो लगा ही रहता है। 'आया है, सो जाएगा' – 'राजा रंक फकीर' में सूफियाना अंदाज है तो वहीं दूसरी ओर ठेठ सड़क–छाप की यह बांकी अदा भी दर्शनीय है – 'निंदा में विटामिन और प्रोटीन होते हैं। निंदा खून साफ करती है, पाचन क्रिया ठीक करती है, बल और स्फूर्ति देती है। निंदा से माँसपेशियाँ पुष्ट होती हैं। निंदा पायरिया का तो शर्तिया इलाज है।

संतों का प्रसंग आने पर हरिशंकर परसाई का शब्द वाक्य–संयोजन और शैली, सभी कुछ एकदम बदल जाता है, जैसे – संतों को परनिंदा की मनाही होती है, इसलिए वे स्वनिंदा करके स्वास्थ्य अच्छा रखते हैं। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' यह संत की विनय और आत्मस्वीकृति नहीं है, टानिक है। संत बड़ा काइयां होता है। हम समझते हैं, वह आत्मस्वीकृति कर रहा है, पर वास्तव में वह विटामिन और प्रोटीन खा रहा है।' एक अन्य रचना में वे "पैसे में बड़ा विटामिन होता है" लिखकर ताकत की जगह 'विटामिन' शब्द से वांछित प्रभाव पैदा कर देते हैं, जैसे बुढ़ापे में बालों की सफेदी के लिए 'सिर पर कास फूल उठा' या कमजोरी के लिए 'टाईफाइड' ने सारी बादाम उतार दी' जब वे लिखते हैं कि 'उनकी बहू आई और बिना कुछ कहे, दही–बड़े डालकर झम्म से लौट गई'; तो झम्म से लौट जाने से ही झम्म–झम्म पायल बजाती हुई नई–नवेली बहू द्वारा तेजी से थाली में दही–बड़े डालकर लौटने की समूची क्रिया साकार हो जाती है। एक सजीव और गतिशील बिम्ब मूर्त हो जाता है। जब वे लिखते हैं कि – 'मौसी टर्राई' या

'अश्रुपात' होने लगा तो मौसी सचमुच टर्राती हुई सुन पड़ती है और आँसुओं की झड़ी लगी नजर आती है। 'टर्राई' जैसे देशज और 'अश्रुपात' जैसे तत्सम शब्दों के बिना रचना में न तो यह प्रभाव ही उत्पन्न किया जा सकता था और न ही इच्छित व्यंग्य।

हास्य–व्यंग्य लेखन हंसी खेल नहीं है। परसाई जी गम्भीर विश्लेषण के अवसर भी निकालते हैं। ऐसे अवसरों पर इनकी भाषा में गम्भीर, तत्सम शब्दावली प्रधान हो जाती है, यथा – "भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्य की आत्मा में होता है, बाहर से नहीं होता। विधाता जब मनुष्य बनाता है तब किसी की आत्मा में ईमान की कल फिट कर देता है और किसी की आत्मा में बेइमानी की। इस कल में से ईमान या बेईमानी के स्वर निकलते हैं, जिन्हें आत्मा की पुकार कहते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि परसाई जी की रचनाओं का उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों को उजागर कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाना है। उनके व्यंग्य अत्यन्त तीक्ष्ण हैं। वे हमें हंसाते भी हैं और अपनी मार्मिक टिप्पणियों के माध्यम से सोचने के लिए भी विवश करते हैं। वे जहां शासकीय अव्यवस्था का विरोध करते हैं वहीं वैयक्तिक विकृतियों पर भी कटाक्ष करते हैं। उनकी व्यंग्य रचनाओं यथा 'भोलाराम का जीव' में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति का स्वर भी सुनाई पड़ता है। इनकी रचनाओं की भाषा सहज, सरल, मुहावरेदार तथा शैली व्यंग्यात्मक है।

6.3.2 रविन्द्र त्यागी की शैली

श्री रविन्द्र त्यागी हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हैं। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आडंबरों पर तीखे, व्यंग्य लिखे हैं। सरकारी तंत्र में फैले हुए भ्रष्टाचार के विरुद्ध भी उन्होंने व्यंग्य लिखे हैं। इनकी भाषा–शैली सहज–स्वाभाविक और सरल है। उसमें गत्यात्मकता है। इन्होनें सीधे व्यंग्य के साथ–साथ लाक्षणिकता का प्रयोग भी किया है, जैसे – 'पुलिस जो दलित स्त्रियों को नंगा करती है और बाकी लोग जो स्त्रियों के साथ राक्षस–विवाह संपन्न करते हैं, वे आर्य–संस्कृति के सच्चे पुजारी हैं। भगवान् उन्हें लम्बा जीवन दे ... स्त्रियों के कारण पुरुष कहाँ और कब नहीं गिरा।" लेखक ने तत्सम–तद्भव शब्दावली के साथ–साथ उर्दू शब्दों का सहज प्रयोग भी किया है, जिससे भाषा को सहजता–सरलता की प्राप्ति हुई है। लेखक द्वारा प्रयुक्त कुछ उर्दू शब्द हैं –फिलहाल, मरीज, खुशमिजाज, वालिद, रखैल, इल्लत इत्यादि। रोजमर्रा के जीवन में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है, जैसे –'मेडिकल कॉलेज, डॉक्टर, राशन कार्ड, आपरेशन, फोटो आदि। लेखक ने दारु, पोथियाँ, तोंद, झंझटों जैसे देशज शब्दों का प्रयोग भी सहजता से किया है जिससे कथन में स्वाभाविकता बनी रहती है।

रविन्द्र त्यागी जी शब्दों के माध्यम से किसी भी घटना, स्थिति अथवा पात्र को सजीव करने की भी भरपूर शक्ति रखते हैं। इससे उनकी भाषा में चित्रात्मकता का गुण आ जाता है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से उन्होंने अपने कथन को और अधिक प्रभावशाली बनाया है। अपनी प्रसिद्ध व्यंग्य रचना 'एक बड़े अस्पताल के बारे में' उन्होंने अनेक मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है यथा – आँखों में आँखे डालना, आँखे चार करना, छाती पर पत्थर रखना, प्राण चले जाना, गम गलत करना, जी भर कर देखना, यमराज से भेंट करना, मौन निमन्त्रण देना, पैसा बटोरना, तत्पर

होना आदि। त्यागी जी गम्भीर विश्लेषण के अवसर भी निकालते हैं। ऐसे अवसरों पर इनकी भाषा में गम्भीर, तत्सम शब्दावली प्रधान हो जाती है जैसे – किसी गरीब स्त्री का शिशु किसी निःसन्तान और अमीर दम्पति को बहुत बड़ी कीमत पर बेच दिया जाता है और गरीब माँ से बता दिया जाता है कि उसका बच्चा जन्म लेने की प्रक्रिया में दिवंगत हो गया। वह गरीब और बेसहारा माता अपनी छाती पर पत्थर रख कर घर लौट जाती है। ऐसे स्थलों पर इनकी शैली भावात्मक तथा विचारात्मक हो जाती है। इन्होंने छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है जिस कारण व्यंग्य की छटा सर्वत्र विद्यमान रहती है।

अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि रविन्द्र त्यागी ने अपनी रचनाओं के अनुरूप सहज, व्यावहारिक तथा तीखी, कटाक्षपूर्ण भाषा शैली का प्रयोग किया है।

6.3.3 शिवपूजन सहाय की शैली

हिन्दी भाषा के विकास में शिवपूजन सहाय का विशेष योगदान रहा है। शिवपूजन सहाय ने अनेक साहित्यिक विधाओं में रचनाएँ की हैं। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। इनकी रचनाओं में प्राचीन और नवीन का स्वस्थ, संतुलित तथा जीवनोपयोगी समन्वय प्राप्त होता। वे सनातन जीवन दर्शन, प्राचीन ज्ञान एवं साहित्य सिद्धांत को नवीन अनुभवों से मिलाकर अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं। इनकी रचनाओं में विषय की विविधता अद्वितीय है। 'देहाती दुनिया' उनकी चरित्र प्रधान रचना है तो भीष्म और अर्जुन रचनाएँ महाभारत के दो पात्रों पर आधारित हैं। ग्रामोद्धार विषयक निबंधों में इन्होंने देश के ग्रामों के विकास के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'मैं धोबी हूँ' उनका ललित निबंध है। जिसमें मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी जाति से नहीं कर्मों से बताई गई है।

आचार्य जी की भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास के प्रति दृढ़ आस्था थी। इन्होंने भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों को अपनी रचनाओं में स्थान प्रदान किया है। जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण भी इन पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव का ही कारण है। 'मैं धोबी हूँ' में आशावादिता का स्वर इन शब्दों में मुखरित हुआ है – "फिर मेरी सामाजिक महिमा भी कुछ कम नहीं है। रानी और सेठानी की साड़ी और कंचुकी का दरस–परस या तो राजा या सेठ को नसीब होता है या मुझे। कवि तो केवल मनमोदक खाते हैं, यहाँ सुंदरी से सुंदरी युवतियों की रंग–बिरंगी साड़ियों और कुर्तियों से नित्य मेरा घर गमगमाया रहता है।

आचार्य शिवपूजन सहाय पूर्णरूप से आस्तिक हैं। उनका यह भाव उनकी रचनाओं में सर्वत्र दिखाई देता है। उनकी मान्यता है कि यह संसार किसी परमशक्ति द्वारा ही संचालित है, जो अव्यक्त होकर भी अपने प्रभाव को प्रकट करती रहती हैं। अपने निबंध 'मैं धोबी हूँ' में वे लिखते हैं – "मैं धोबी हूँ, भगवान् भी धोबी है। मैं कपड़े धोता हूँ, वे पाप धोते हैं।" धोबी भगवान् का धन्यवाद भी करता है कि "उन्होंने ही मुझे अपने–आपसे भी अधिक पतिपावनता दी है। वे केवल उसी पतित या पापी का उद्धार करते हैं, जो उनकी शरण में पहुँच जाता हैं; पर मैं तो स्वयं घर–घर पहुँचकर लोगों का पातित्य दूर करके पवित्रता वितरित करता हूँ।"

भारतीय संस्कृति का मूल आधार मानवतावादी दृष्टिकोण रहा है। हमारे देश के ऋषि–मुनियों ने भी 'वसुधेव कुटुम्बकम्' का आदर्श प्रचारित किया था। आचार्य शिवपूजन सहाय जी की रचनाओं में भी मानव कल्याण का स्वर

अत्यंत मुखरित हुआ है। इनके ग्रामोद्धारक लेखों में प्रमुख भावना मानव के कल्याण की ही है। 'मैं धोबी हूँ' में अप्सराएँ धोबी को दंड देते हुए कहती हैं – "तेरी पूर्वकृत सेवाओं का स्मरण कर केवल इतना ही दंड दिया जाता है कि पृथ्वीतल के मानव–समाज में तू अस्पृश्य समझा जाएगा; क्योंकि वासना तेरी नस–नस में बस गई है। किंतु तेरे शुभ कर्म का जो गुण पवित्रीकरण है, उसके प्रभाव से तेरा दर्शन यात्राकाल में सदा मंगलप्रद माना जाएगा।" यहाँ देवलोक से ध ोबी का निष्कासन मानवकल्याण के लिए ही किया गया है।

आचार्य शिवपूजन सहाय की रचनाओं में व्यंग्यप्रधान शैली का प्रयोग भी अत्यंत शिष्ट भाषा में किया गया है, जिससे वे मन को चुभने वाली बातें भी मीठी वाणी में कह जाते हैं; जैसे – 'मैं धोबी हूं' में धोबी का यह कथन – "मैं अपनी करनी का फल पा गया। गदहे पर चढ़ाकर सुरलोक से निकाल दिया गया। वही गदहा मेरी सनातन सवारी है। भगवान् की तरह अब भले ही मैं पतितपावन नहीं रह गया; पर मेरी उनकी श्रेणी एक ही है, इसमें कठहुज्जतन कीजिए। मेरी सवारी गर्दभ है – दूर्वाकन्द–निकन्दन वैशाखानन्दन। उनकी सवारी गरुड़ है – सर्पकुल–निकन्दन विनातानन्दन। 'ग' कार और 'र' का मेल दोनों सवारियों के नाम में है।"

शिवपूजन जी की रचनाओं में सामाजिक सुधार का स्वर भी मुखरित हुआ है। उन्होंने समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को देखा समझा और समाज के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए ग्रामोद्धार संबंधी लेख भी लिखे। कहीं व्यंग्यात्मक चुटकियों द्वारा भी उन्होंने कानों सुनी पर विश्वास नहीं करने का उपदेश भी दिया है। 'मैं धोबी हूँ' में धोबी कहता है – "मेरा और भगवान् का पुराना नाता है। रामावतार जब लंका–विजय करके लौटे,रजक–रजकी का प्रणय–कलह सुनकर सीताजी को वनवासिनी किया।" लेखक को नारी–जाति का यह अपमान स्वीकार नहीं था।

भाषा विधान की दृष्टि से आचार्य शिवपूजन सहाय जी का तत्सम शब्दों के प्रति विशेष लगाव है। उन्होनें विभिन्न पत्रिकाओं का संपादन करते हुए उनमें प्रकाशित सामग्री की भाषा में संशोधन किए थे। इसलिए वे अपनी भाषा में सुबोध, सरल, स्वच्छ और सार्थक शब्दावली का प्रयोग करते हैं जो तत्सम प्रधान होते हुए भी दुरुह नहीं होती है; जैसे "मैं पहुचा इंद्रलोक। वहां नन्दन–वन के कमल–कुमुद–मधुप–मराल–सेवित सरोवरों में कपड़े धोने लगा। उन धुले कपड़ों में हँसों की उज्ज्वलता और कमल–कुमुदों की सुरभि आ जाती थी।" कहीं–कहीं मुहावरों का सहजरूप से प्रयोग भी इनकी भाषाओं को प्रभावशाली बना देता है; जैसे – 'मैं अपनी करनी का फल पा गया।" इनकी रचनाओं में विचारात्मक, भावात्मक एवं व्यंग्यात्मक तीनों प्रकार की शैलियों के दर्शन होते हैं। स्वयं घर–घर जा कर लोगों का पातित्य दूर करके पवित्रता वितरित करने वाला धोबी जब यह पूछता है कि 'ऐसा करने पर भी 'मैं अस्पृश्य क्यों हूँ? तो हमें विचार करने के लिए लेखक संकेत देता है कि समाज में छुआ–छूत क्यों? पूंजीपतियों पर व्यंग्य करते हुए लेखक धोबी के स्वर में कहता है – "ऐसी ऐसी महीन साड़ियाँ जो मुट्ठी में समा जाती थीं। उन्हें निचोड़ने में जितना रसानुभाव मैं करता था, उतना तो ग़रीबों में चूसने वाले नींबू निचोड़ लहनदार भी न करते होंगे।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आचार्य शिवपूजन सहाय भाषा और समाज का परिष्कार करने वाले सिद्धहस्त साहित्यकार थे, जिनकी रचनाओं का मूल स्वर मानव–कल्याण था।

6.3.4 नामवर सिंह की शैली

प्रसिद्ध आलोचक तथा निबंधकार डॉ. नामवर सिंह मार्क्सवाद से प्रभावित रहे। यह एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने पाश्चात्य साहित्य का अनुसरण कभी नहीं किया, परन्तु साहत्य से सम्बन्धित पुरातन, रूढ़, सड़ी गली मान्यताओं का विरोध करते हुए साहित्य में नए मानदंड स्थापित किए हैं।

इन्होंने नवयुग (साप्ताहिक) तथा आलोचना (त्रैमासिक) का संपादन भी किया है। इनका कार्यक्षेत्र अध्ययन–अध यापन रहा है तथा ये भारतीय भाषा केंद्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में प्रोफैसर एवं अध्यक्ष रहे हैं। इनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए इन्हें नई दिल्ली की साहित्य अकादमी ने सम्मानित भी किया था।

डॉ. नमावर सिंह की आलोचना एवं निबन्धों से संबंधित प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं –

बकलम खुद, बात बात में बातं।

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, छायावाद, पृथ्वीराज रासो की भाषा, इतिहास और आलोचना, नई कहानी, कविता के नए प्रतिमान, दूसरी परंपरा की खोज, साहित्य की पहचान, कार्लमार्क्स : कला और चिंतन, आधुनिक हिंदी उपन्यास, आलोचना और विचारधारा।

मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण डॉ. नामवर सिंह के साहित्य में इनका प्रगतिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है। अपने इस विचार की व्याख्या उनके द्वारा रचित ग्रन्थों – 'इतिहास और आलोचना, छायावाद, आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ तथा कविता के नए प्रतिमान में दिखाई देती है। इसमें भी इन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है तथा भावुकता का विरोध किया है।

डॉ. नामवर सिंह सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री भी हैं। इन्होंने आधुनिक हिंदी में स्वरूप को निर्धारित करने के लिए अपनी रचना 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' में यह प्रतिपादित किया है कि हिंदी का विकास अपभ्रंश की जीवन्त परंपराओं को आत्मसात् करके ही हुआ है। इसी प्रकार से उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' रचना में पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त भाषा का विस्तृत निरूपण किया है।

डॉ. नामवर सिंह के साहित्य में सर्वत्र अव्यवस्था के विरोध का स्वर सुनाई देता है। वे साहित्य, राजनीति एवं सामाजिक जीवन में अव्यवस्था सहन नहीं कर सकते। इसलिए जहाँ उन्होंने सामाजिक जीवन में व्याप्त परंपरागत रूढ़ियों का विरोध किया है वहीं व्यर्थ की बातों से भी परेशान हो जाते हैं। 'गप–शप' निबंध में किसी गोष्ठी से लौटकर लेखक का 'मन इतना भारी था कि कभी ऐसी गोष्ठी में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की। बाद में जब लेखक इस गोष्ठी में हुए व्यर्थ संवादों पर विचार करता है तो उसे लगता है कि "बेकार की बातों से ही तो किसी का चरित्र खुलता है।"

लेखक की समाज को देखने की अपनी ही दृष्टि है। वह सुनी–सुनाई अथवा आडम्बरपूर्ण जीवन–यापन की दृष्टि से समाज को नहीं देखता है। उसका मानना है कि 'समाज का पता उसके धनाढ्य व्यापारियों, सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को देखकर उतना नहीं चलता जितना उनके बेकार आदमियों को देखकर। बेकार घूमने वाले आदमी ही किसी समाज की व्यवस्था का सच्चा हाल प्रकट करते हैं।

लेखक देश की वर्तमान आर्थिक दुर्दशा से बहुत चिंतित है। उसके अनुसार 'आज देश में लाखों किसान–मज़दूर बेकार पड़े हैं, कितने ही शरणार्थी आश्रयहीन की दशा में घूम रहे हैं, बेकारी की दशा में लेखकों की कलमें शिथिल हो रही हैं, खून की स्याहियाँ सूख रही हैं, साँसों के तार–तार हो रहे हैं – हिन्दुस्तान इसमें छिपा है।" वह इस दशा के बदलने की कामना करता है। बेकारों को काम मिले तभी देश का विकास संभव है।

डॉ. नामवर सिंह के निबंधों में व्यंग्य अत्यंत सहज भाव से उभर कर आता है। वे प्रशासनिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि किसी विषय पर सहजभाव से अपनी बात कह देते हैं, जो तीक्ष्ण व्यंग्य में बदल जाती है। 'मरा हूँ हज़ार मरण' में लेखक निराला के काव्य की समीक्षा करने वालों को स्पष्ट कह देता है कि जब "मेरे लिए निराला के काव्य का सामना करना हममें से हर एक का कठघरे में खड़े होना है। इतने पर कोई आदमी निराला का सामना करेगा तो घिसी–पिटी बातों को ही दुहरायेगा।" समाज के पूंजीपति वर्ग पर लेखक का यह कटाक्ष भी अवलोकनीय है – "इन अंधेरी घाटियों में जहाँ दिन नहीं पाते, केवल रातें रहती हैं; उन अट्टालिकाओं और धवल सौंध–शिखरों से नहीं भली–भाँति सोने की चमक से प्रकाशित है।"

डॉ. नामवर सिंह यथार्थवादी लेखक माने जाते हैं, जिनके लिए भावुकता वर्जित कही गई है परंतु जो साहित्यकार है वह संवेदन शून्य नहीं हो सकता क्योंकि संवेदना से ही साहित्य का सृजन संभव है। यह संवेदना भावना से जुड़ी होती है, इसलिए साहित्यकार की रचना में भावुकता का सहज भाव से समावेश हो जाता है। 'मरा हू हजार मरण' में लेखक का यह स्वीकार करना कि 'सच्चा कवि हर कविता के साथ मरता है और नया जन्म लेता है।' यही सिद्ध करता है कि वह भी भावुकता से रहित नहीं है। इसलिए वह निराला जी के लिए लिखता है – "चरणों में मरण का महावर लगा दिया है। कवि खिले हुए पुष्प जैसी कविता लिख सकता है। घूमता हुआ शरद आये, पावस आये, मेघ छाये, उस सुंदरता को लिख सकता है। इसलिए निराला की कविताओं में जो जीवन–रस है, रूप है, रंग है, गंध है उसे समझना जरूरी है।यह वह कवि निराला है जिसने मरण का वरण किया था, इसलिए वह जीवन का चित्र उपस्थित कर सका था।

डॉ. नामवर सिंह की भाषा अत्यंत सहज तथा प्रभावशाली है। इन्होंने अपनी रचनाओं में भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। 'गप–शप' निबंध के प्रारंभ में 'व', 'प' और 'स' के संदर्भ से लेखक ने गप्पें हाँकने वालों की मानसिकता का कच्चा चिट्ठा खोल दिया है जो "दस फीसदी सच्चाई पर नब्बे फीसदी झूठ का मुनाफा रखकर बातें" करते हैं। यहाँ भाषा शुद्ध बोलचाल की है जिसमें तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों की अधिकता है। 'मरा हूँ हज़ार मरण' में तत्सम प्रधान भाषा के दर्शन होते हैं; जैसे – "घनघोर आशावाद तुम्हें धराशायी ही करेगा। कवि है जो सतर्क रहता है। आत्म–प्रवंचना है आशावाद, इसिलए उस निराशावाद को बचाये रखें।"

लेखक ने अपने निबंधों में आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा व्यंग्यात्मक शैलियों का प्रयोग किया है, जिनमें सर्वत्र सहजता के दर्शन होते हैं। प्रश्नों का सही उत्तर न देने वालों पर कटाक्ष करते हुए लेखक की व्यंग्यात्मक शैली का एक उदाहरण अवलोकनीय है – "प्रश्न कुछ होता है, उत्तर कुछ होता है, उत्तर का उत्तर दिया जाता है और प्रश्न का प्रश्न। जैसे – शब्दों की अपार वस्त्रराशि में से कोई कुछ पहन ले, कोई कुछ–कमीज़ की जगह पायजामा और पायजामा की जगह कुर्ता।"

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि डॉ. नामवर सिंह मूलरूप से एक समाजशास्त्री समालोचक हैं। उनकी समीक्षक दृष्टि यथार्थवादी है। उन्होंने साहित्य, समाज, राजनीति आदि क्षेत्रों में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को उजागर कर एक स्वच्छ, श्रेष्ठ तथा स्वस्थ साहित्य, समाज एवं राजनीतिक जीवन की परिकल्पना की है। वे कथनी और करनी में सामंजस्य के समर्थक हैं।

6.4 निष्कर्ष – इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में हमने निर्धारित पाठों के लेखकों की शैली का विस्तृत अध्ययन किया।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

(i) हरिशंकर परसाई की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

(ii) रविन्द्र त्यागी कृत व्यंग्य 'एक बड़े अस्पताल' के बारे में की भाषा–शैली पर चर्चा करें।

____

____

____

____

____

(iii) शिव पूजन सहाय की शैली पर दृष्टि डालें।

____

____

____

____

____

(iv) नामवर सिंह अपने निबन्धों में किस प्रकार की शैली का प्रयोग करते हैं ?

____

____

____

____

____

6.6 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

(i) गद्यफुलवारी– डॉ. शहाबुद्दीन शेख, कश्मीरी गेट दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़ 2012

(ii) गद्य की नई विधाओं का विकास– माजदा असद, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।

(iii) निबन्धों की दुनिया– हरिशंकर परसाई।

B.A. HINDI	**UNIT-III**	**Lesson No. 7**
COURSE CODE: HI-301		**B.A. Sem-III**

'आवाज़ का नीलाम' एकांकी और 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत की सप्रसंग व्याख्याएँ

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी की सप्रसंग व्याख्या

7.4 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत की सप्रसंग व्याख्या

7.5 शब्दावली

7.6 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य पाठयक्रम में निर्धारित एकांकी एवं यात्रावृतांत की सप्रसंग व्याख्या से विद्यार्थियों को अवगत करवाना है।

7.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में हम पाठयक्रम में निर्धारित एकांकी एवं यात्रावृतांत की सप्रसंग व्याख्या करते हुए उनका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

7.3 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी की सप्रसंग व्याख्या :–

1) कृपा ! बेईमान, कमीना, मैं खूब समझता हूँ तुम्हारी कृपा। आज 10 साल से जब मैंने अपनी एक–एक हड्डी जलाकर अखबार निकाला; सरकार से लड़ा, सेठों से लड़ा, जमानतें दीं, घर बिक गया, बीबी सूखकर कंकाल हो गई, तब किसी ने दया नहीं दिखाई । मैंने किसी के सामने सिर झुकाना ही नहीं सीखा था । आज

जब अखबार बेच रहा हूँ तो दिन में तीन–तीन मर्तबा टेलीफोन से पूछा जाता है। कितनी चिन्ता है सेठ बाजोरिया को । पाँच मिनट में आ रहे हैं।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी में से लिया गया है। इसके रचयिता साहित्यकार 'धर्मवीर भारती' हैं।

संदर्भ :– यह संवाद संपादक दिवाकर ने सेठ बाजोरिया के संबंध में कहा है। यहां सेठ बाजोरिया की अवसरवादी प्रवृति पर व्यंग्य किया है।

व्याख्या :– लेखक ने संपादक की विक्षप्त मनः स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। कठिन परिश्रम और जटिल परिस्थितियों से जूझने के पश्चात् भी दिवाकर ने समाचार पत्र को जीवित रखा, उसे बन्ध नहीं होने दिया। परन्तु उसे आज पत्र को बेचना पड़ रहा है। अपनी पत्नी के ईलाज के लिए उन्हें पैसों की जरूरत है। उनकी पत्नी शीला अस्पताल में भर्ती है तथा उसके ईलाज के लिए दिवाकर को पत्र नीलाम करना पड़ रहा है। लेखक ने दिवाकर की लाचारी, निष्ठा और जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है। टेलीफोन पर हुई बातचीत के पश्चात् दिवाकर के मन के उद्‌गारों को व्यक्त किया है। वह सेठ बाजोरिया की कृत्रिम उदारता को भली–भांति समझता है, उसके दोहरे व्यक्तित्व पर टिप्पणी करता है। मैं तुम्हारी मंशा को समझता हूँ। जब में पिछले दस सालों में विभिन्न परिस्थितियों– आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक दबाब का सामना कर, सत्य को जनता तक पहुँचाने के लिए संघर्ष कर रहा था, तब किसी भी सेठ ने सहानुभूति नहीं दिखाई। आज जब मुझे पैसों की जरूरत है तो दिन में तीन–तीन बार टेलीफोन से पूछा जा रहा है। मैं पत्र खरीदने आ रहा हूँ। अचानक सेठ बाजोरिया को मेरी इतनी चिन्ता क्यों हो रही है। मैंने विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारी; अपना पत्र निकालता रहा, लेकिन आज सेठ मेरी मजबूरी का फायदा उठाना चाहता है, इसलिए वह पाँच मिनट में पहुँच रहे हैं।

विशेष :– पत्रकारिता का यथार्थ चित्रण है। समसामयिक–राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक परिस्थितियों का चित्रण है। भाषा सहज, सरल, स्वाभाविक खड़ी बोली हिन्दी है। 'मर्तबा', 'अखबार', 'टेलीफोन', 'मिनट' आदि अरबी, फारसी, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

2) बस पाँच–दस मिनट और! उसके बाद तुम मेरे नहीं रहोगे। मैं दस्तखत कर दूँगा और तुम बिक जाओगे। कितनी साध से मैंने तुम्हें निकाला था, कितनी लगन से, कितनी मुसीबतें झेलकर तुम्हें चलाया था। याद है तुम्हें! जब तुम्हारा विशेषांक निकल रहा था और शीला सीढ़ी पर से गिर पड़ी थी, लेकिन मैं उसके पास नहीं था। याद है जब शीला की दवा के रुपये से मैंने सत्तार–प्रेस वाला टाइप खरीद लिया था। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ भूल गया था, अपने को, अपनी फूलों जैसी बच्ची को, अपनी शीला को, महज इसलिए कि तुम मेरी आत्मा की आवाज बन सको, मेरी नंगी–भूखी जनता की आवाज बन सको। सत्य की आवाज बन सको। लेकिन नहीं... अब तुम बाजोरिया की आवाज बनोगे।

प्रसंगः– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी में से लिया गया है। इसके रचयिता साहित्यकार 'धर्मवीर भारती' हैं।

संदर्भ :– प्रस्तुत पंक्तियों में दिवाकर की विक्षिप्त मनःस्थिति का चित्रण है। दिवाकर सेठ बाजोरिया के आगमन का इंतजार कर रहा है। उसकी चिंता एवं निराशा का चित्रण किया गया है।

व्याख्या :– दिवाकर बेचैन है। उसकी बेचैनी का कारण सेठ बाजोरिया है। जो पाँच मिनट में पत्र खरीदने आ रहा है। दिवाकर आत्मचिंतन कर रहा है कि जिस समाचार पत्र को प्रकाशित करने के लिए उसने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया है। जिसके लिए अपने घर–परिवार की उपेक्षा की। प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति में संपादकीय दायित्व का ईमानदारी से निर्वाह किया। आज सेठ के पहुँचते ही पत्र बिक जाएगा और बाजोरिया उसका मालिक बन जाएगा। इसी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में दिवाकर दीवार पर टंगी फाइल उठाता है, उसे हृदय से लगाकर आत्मलाप करता है– अब तुम मेरे नहीं रहोगे। मेरे एक हस्ताक्षर से तुम सेठ बाजोरिया के अधीन हो जाओगे। तुम केवल पत्र ही नहीं थे, मेरे जीवन का उद्देश्य थे। कितनी साधना और परिश्रम से तुम्हें निकालता आया हूँ। मेरी उम्मीदें जुड़ी हुई हैं। जब मैं विशेषांक निकाल रहा था और शीला सीढ़ियों से गिर पड़ी थी। मैंने पत्नी की देखबाल की जगह तुम्हें निकालना अपना दायित्व समझा था। पत्नी की दवा के रुपये से 'सत्तार–प्रेस' वाला टाइप खरीद लिया था, ताकि विशेषांक निकालने में कोई व्यवधान न आए। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ भूल गया था। तुम्हें अपने व्यक्गित जीवन से ज्यादा महत्व दिया। वास्तव में तुम्हारे माध्यम से समसामयिक यथार्थ समाज के सामने ला सकूँ। वर्तमान सत्य को निरावृत रूप में भूखी–नंगी जनता तक पहुँचा सकूँ। परन्तु अब ऐसा सम्भव नहीं होगा। सेठ बाजोरिया के आते हुए, तुम उसके अधीन हो जाओगे। वह तुम्हारा मालिक बन जाएगा और फिर वही सत्य जनता तक पहुँचेगा जैसे वह चाहते हैं।

विशेष :– लेखक ने एक सत्यनिष्ठ, कर्तव्यपरायण संपादक की मनःस्थिति का सजीव चित्रण किया है। दिवाकर के माध्यम से एक निष्ठावान संपादक के कर्तव्य, परिश्रम, संघर्ष एवं जीवन यथार्थ को व्यक्त किया है।

– विशेषांक अर्थात् किसी एक विषय पर केन्द्रित पत्र का अंक।

– भाषा खड़ी बोली हिन्दी। दस्तखत, प्रेस, टाइप, महज, आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

3) इस आवाज़ के लिए अपने को बर्बाद कर दिया था, लेकिन जनता इस नए इंसान की आवाज नहीं सुनना चाहती। उसे सच्चाई की आवाज नहीं चाहिए। उसे चाहिए शौख कवर, भड़कीले चित्र, रंग–बिरंगे विशेषांक .... वह सब जो उसे सेठ बाजोरिया के अखबार में मिलता है।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी में से लिया गया है। इसके रचयिता साहित्यकार 'धर्मवीर भारती' हैं।

संदर्भ :– प्रस्तुत पंक्तियाँ दिवाकर ने सेठ बाजोरिया को प्रत्युत्तर में कही हैं। यहां 'आवाज़' जैसे भारतीय समाचार पत्रों के प्रति बुद्धिजीवियों और जनता की उदासीनता का चित्रण है।

व्याख्या :– दिवाकर सेठ बाजोरिया को कहते हैं कि आज समाचार पत्रों में हड़तालों के नारे, लड़ाईयों का शोरगुल, सेनाओं की परेडें, जंगी जहाजों का घर्राटा आदि रोजमर्रा की खबरें छपती हैं। इन विध्वन्सात्मक और विनाशकारी स्थितियों में मैंने अपना पत्र निकाला था, ताकि युगीन सत्य समाज तक पहुँचा सकूँ। नए इंसान अर्थात्

सचेत एवं सक्रिय व्यक्ति की आवाज़ जीवित रह सके। इस आवाज़ को जिन्दा रखने के लिए अपना सर्वस्व लूटा दिया। यह पत्र मेरे जीवन का उद्देश्य बन गया, इसीलिए मैंने अपने समाचार पत्र का नाम 'आवाज' रखा था। इसमें नयी आवाज अर्थात् जनता की विरोधात्मक स्वर दर्ज हो सके। परन्तु पत्र के प्रति जनता का रवैया चिन्ताजनक है। ऐसा प्रतीत होता है कि जनता सच नहीं सूनना चाहती। उसे सस्ते पत्र में रूचि नहीं है। वह तो रंग–विरंगे विशेषांक, भड़कीले चित्र, शोख कबर, रंगीन खबरे और महँगे पत्र पसन्द करती है। यह सब उसे मेरे पत्र में नहीं मिल सकता। ये सब तो उन्हें आपके महंगे पत्र में ही मिल सकता है।

विशेष :– निष्ठावान व ईमानदार संपादक की दयनीय स्थिति का वर्णन है। दिवाकर के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन संपादकओं की आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है। पत्रों के प्रति जनता की उदासीनता को कारण रूप में चिन्हित किया है।

भाषा सहज, सरल, खड़ी बोली हिन्दी है।

4) अब साधना और तपस्या के दिन भी तो नहीं रह गए। अब कलम की शान और विचारक की आजादी का भी तो कोई अर्थ नहीं रहा । अब तो अगर मैं आपके पत्र में हूँ तो आपका ढोल बजाऊँ, उसके पत्र में हूँ तो...

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी में से लिया गया है। इसके रचयिता साहित्यकार 'धर्मवीर भारती' हैं।

संदर्भ :– प्रस्तुत संवाद दिवाकर ने सेठ बाजोरिया को कहा है। यहां तत्कालीन पत्रकारिता में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर मंडराते खतरे को रेखांकित किया गया है।

व्याख्या :– लेखक कहते हैं कि नित्य प्रायः पत्र जगत् में चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक आदि दवाब के कारण संपादक की मुश्किलें बढ़ रही हैं। उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के साथ समझौता करना पड़ रहा है। उनकी सत्यनिष्ठा एवं नैतिकता में विघटन हो रहा है। आर्थिक अभाव के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दिवाकर तत्कालीन परिस्थितियों से सेठ को अवगत करवाते हुए कहता है– अब साधना और तपस्या के दिन भी तो नहीं रह गए। आज पत्रकार की कलम और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, महत्वाकांक्षी सेठों, धनाढ़य वर्ग की धीरे–धीरे गुलाम बनती जा रही है। संपादक का स्वतंत्र अस्तित्व खतरे में है, उसे तो अपने मालिक की आज्ञानुसार ही संपादकीय लिखना पड़ता है। यदि वह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के साथ समझौता नहीं कर पाता तो उसे नये विकल्प की तलाश करनी पड़ती है अर्थात् उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है।

विशेष – लेखक धर्मवीर भारती जी 'धर्मयुग', साप्ताहिक 'हिन्दोस्तान' जैसी प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं के कुशल संपादक रहे हैं। वह स्वयं भोगता हैं, इसलिए तत्कालीन पत्र जगत् के यथार्थ को बेवाकी से चित्रित करते हैं। संपादक के स्वतन्त्र अस्तित्व और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लेखक का चिंतन विचारणीय है।

5) आज गृह–मन्त्री आपके मित्र हैं, लेकिन सन् 42 में गृह–मन्त्री आपके मित्र नहीं थे, जब पुलिस उन्हें हथकड़ियाँ पहनाकर आपके दरवाजे से ले गई थी! उस दिन आप उनसे दौड़कर गले नहीं मिले थे...उस दिन तो आप मिलीटरी के लिए ठीके ले रहे थे और आपके अखबार अंग्रेजी सरकार का विज्ञापन छाप रहे थे कि कांग्रेस वाले गुंडे हैं। कम–से–कम चैटर्जी ने गृह–मन्त्री को गुंडा तो नहीं लिखा था।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी में से लिया गया है। इसके रचयिता साहित्यकार 'धर्मवीर भारती' हैं।

संदर्भ :– यहां लेखक ने स्वतन्त्रता पूर्व एवं पश्चात् भारतीय पत्रकारिता एवं संपादक का यथार्थ चित्रित किया है।

व्याख्या :– लेखक ने स्वतन्त्र्योत्तर पत्रकारिता पर प्रकाश डाला है। स्वतन्त्रता पूर्व जो पत्रकार सरकारी विज्ञापन छापते थे। ब्रिटिश सरकार की देश विरोधी नीतियों के प्रचार–प्रसार में व्यस्त रहते थे वही पत्रकार स्वतन्त्रता पश्चात् भारतीय सरकार के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने लगे। वे मौजूदा सरकारी मंत्रियों– राजनीतिज्ञों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं ताकि अवसरानुकूल लाभ उठा सकें। दिवाकर सेठ पर व्यंग्य करता है– आज आप देश का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठाने की बात कर रहे हैं। आप उस समय कहां थे, जब सन् 1942 के स्वाधीनता संग्राम में गृह मंत्री कांग्रेस के कार्यकर्त्ता के रूप में अंग्रेजों द्वारा बंधी बना लिए गए थे। तब आपने उन्हें जेल से छुड़ाने में अपना दायित्व नहीं समझा था; तब आपकी दृष्टि में वह राजतंत्र विरोधी थे। आपकी कलम स्वतन्त्रता सेनानियों के प्रति सरकार के अनीतिपूर्ण रवैये पर चुप्पी साधे हुए थी और आप सरकार के विज्ञापन छापने में व्यस्त थे। आप मिलीटरी के लिए ठेके ले रहे थे। कांग्रेस पार्टी के नेता आपकी दृष्टि में भागी उदण्ड तथा गुण्डे थे। आज उसी कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्त्ता जब सरकारी पदों पर आसीन हैं तो आपके लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं। गृह–मन्त्री के साथ आपका घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए उनके विरुद्ध किसी भी खबर को छापने से आप घबराते हैं कि मंत्री का सच जनता के सामने न आ जाए और आपके मैत्रीपूर्ण संबंधों में तनाव पैदा न हो। वास्तव में आपके लिए पत्रकारिता पूँजी का एक माध्यम है और पूँजीवादी नीति ही मानदण्ड निर्धारित करती है।

विशेष :– पत्रकारिता में पूँजीवाद के निवेशोपरान्त नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ। सेठ बाजोरिया पूँजीवाद का प्रतीक है। वह प्रत्येक स्थिति में केवल मुनाफे की भाषा बोलता है।

– सन् 1942 ई. के स्वाधीनता संग्राम की परिस्थितियों का अवलोकन है।

– भाषा सरल, सहज, प्रभावपूर्ण खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग किया गया है।

7.4 जमनोत्री की यात्रा' की सप्रसंग व्याख्या :–

1) सभी देश अपनी नदियों से प्यार करते हैं, लेकिन भारत अपनी ''गंगा–यमुना'' को ''माँ'' कहकर प्यार ही नहीं करता, उनकी पूजा भी करता है। वे पतित–पावनी हमारे पापों को बहा भी ले जाती हैं। उसने भूगोल को अध्यात्म का रूप दिया है और प्राणहीन ''भू'' और गन्धहीन ''जल'' में माँ के स्नेह की कल्पना की है। तभी

तो प्रतिवर्ष अनेकानेक, भारतवासी अपनी इस ममतामयी माँओं की जन्म–भूमि में जाने के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'जमनोत्री की यात्रा' में से लिया गया है। इसके रचयिता 'विष्णु प्रभाकर' जी हैं।

संदर्भ :– इसमें लेखक ने जमनोत्री की यात्रा के दौरान अपने अनुभवों का विशुद्ध चित्रण किया है।

व्याख्या :– लेखक ने भारतीय जनमानस का अपनी संस्कृति एवं प्रकृति के प्रति प्रेम का मनोहर चित्रण किया है। वह कहते हैं कि विश्व के समस्त राष्ट्र अपनी–अपनी संस्कृति से प्रेम करते हैं, परन्तु भारतवासी का देश–प्रेम अनूठा है। वे अपने देश की नदियों– गंगा, यमुना, कावेरी आदि को माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। वे इन नदियों को जीवनदायिनी समझकर इनकी पूजा–अर्चना करते हैं। वे केवल प्रेम ही नहीं करते बल्कि श्रद्धाभाव से पूजते हैं। भारतीयों की आस्था है कि इनके दर्शन–स्नान से मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है। वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। ये पतित–पावनी हैं। अपने अध्यात्म एवं लोक विश्वास के कारण भारत सम्पूर्ण विश्व में विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। वह पृथ्वी तथा जल में माँ के स्नेह व ममता की कल्पना करते हैं। लोगों को अपनी संस्कृति में दृढ़ आस्था है। इसी कारण प्रतिवर्ष लोग देवी स्थलों की यात्रा करते हैं। वे जमनोत्री–गंगोत्री जैसे दुर्गम पर्वतीय तीर्थ स्थलों के दर्शन के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं। इन कठिन रास्तों को वे श्रद्धावश बड़ी सहजता एवं हर्ष–उल्लास के साथ पार कर जाते हैं।

विशेष :– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने भारतीय जन–मानस की आस्था एवं संस्कृति–प्रकृति प्रेम का चित्रण किया है।

– जमनोत्री से जुड़े पौराणिक संदर्भों का विवरण प्रस्तुत किया है।

– भाषा सहज, सरल खड़ी बोली हिन्दी है।

2) मीलों तक देवदारु के मनोरम वृक्ष स्वागत में ग्रीवा उठाए खड़े थे। नीचे चारों ओर हरीतिमा बिखरी थी। आकाश भी सुरमई घटाओं से भर उठा। एक ओर देवदारु के कुंज, दूसरी ओर बनवासी श्वेत गुलाब की सुगन्ध, नाना औषधियों का द्रुम दल। आँख भर–भर उठी, तपोवन और कैसा होता होगा। पक्षी चहक रहे थे। नीचे से यमुना का संगीत मुखर हो रहा था। क्या ही अच्छा हो, घर–घर में ''हेलीकोप्टर'' हों और हम लोग ''पिकनिक'' के लिए वहाँ जा सकें। कैसा है यह देवदारु का शान्त, भव्य, ऊपर को उठाता और संकीर्ण होता गया नुकीली अँगुलियोंवाला गर्वोन्नत वृक्ष, मानो देव मन्दिर हो।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'जमनोत्री की यात्रा' में से लिया गया है। इसके रचयिता 'विष्णु प्रभाकर' जी हैं।

संदर्भ :– यमुनोत्री के प्राकृतिक सौन्दर्य का जीवंत चित्रण किया गया है।

व्याख्या :– लेखक का दल हनुमान चट्टी से पाँच मील की दुर्गम चढ़ाई के उपरान्त एक दिव्य स्थल पर पहुँचता है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य अतुलनीय है। इस दिव्य स्थल के प्रथम दर्शन से मन सहसा प्रफुल्लित हो उठा, ऐसा प्रतीत हुआ मानो मीलों तक फैले आकाश चुम्भी देवदारु के वृक्ष आगामी श्रद्धालुओं के स्वागत में ग्रीवा उठाए खड़े हैं। चारों ओर हरियाली है, आकाश काली घटाओं से युक्त अद्वितीय सौंदर्य बिखेर रहा है। एक तरफ देवदारू के वृक्ष हैं तो दूसरी ओर जंगली सफेद गुलाब के फूलों से सुगन्धित वातावरण यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करता है। नाना प्रकार की औषधियों से भरपूर यह प्रदेश अलौकिक आनन्द प्रदान करता है। इस दिव्य सौंदर्य को देखकर श्रद्धायुक्त यात्रियों की आँखों में अश्रु उमड़ पड़ते हैं। पंक्षी चहचहा रहे हैं, यमुना का मधुर संगीत सुनाई पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यही तपोवन है। लेखक कहते हैं कि इस तपोवन को देखकर हृदय में इच्छा होती है कि बार–बार इस दिव्य भूमि के दर्शन का लाभ उठा सकूं। जीवन का वास्तविक आनन्द भोग सकूँ। सामने कतार में खड़े देवदारु का शान्त, भव्य, गंगनचुम्भी गर्वोन्मत मस्तक और संकीर्ण क्षीण काय शरीर किसी आराध्य देवता का मन्दिर हो।

विशेष :– प्रकृति का मनोहर चित्रण है।

– मानवीकरण अलंकार है।

– वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

– भाषा सहज, सरल खड़ी बोली हिन्दी है।

3) प्रातःकाल की संजीवनी वायु का परस पाकर मन–प्राण में ऐसी अपूर्व शक्ति भर उठी कि सारा भय न जाने कहाँ तिरोहित हो गया। कटा–फटा होकर भी शुरू में मार्ग एक मील तक सीधा है। उसके बाद ढाई मील की प्राणलेवा चढ़ाई है। हमारे मनों पर भी उसका आतंक छाया हुआ था, लेकिन बहुत शीघ्र ही वह उल्लास में परिवर्तित हो गया, प्रकृति नदी ने उस प्रदेश को मानो वन–कन्या की भाँति सँवारा हो।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'जमनोत्री की यात्रा' में से लिया गया है। इसके रचयिता 'विष्णु प्रभाकर' जी हैं।

संदर्भ :– लेखक ने जनमोत्री के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या :– लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभवों का अद्वितीय चित्रण किया है। इनके अनुसार पहाड़ी प्रदेश का वातावरण अत्यधिक मनोहर होता है, जिसके दर्शन मात्र से मन में उल्लास पैदा होता है। यमुनामाई चट्टी से जमनोत्री की दूरी चार मील है, लेकिन आगामी मार्ग अत्यधिक दुर्गम है। आकाश–पातालगामी मार्ग अर्थात् कठिन चढ़ाई के पश्चात् लेखक का दल यमुना मैया के दर्शनों की अभिलाषा में निकल पड़ा। प्रातः कालीन हवा का संस्पर्श पाकर मन–प्राण ऊर्जा से भर उठा। लेखक कहते हैं कि ताजी हवा के संस्पर्श से रास्ते की कठिनाई का भी ध्यान न रहा। जंगली जानवारों से प्राणों की रक्षा का डर भी निकल गया। ऐसा लगता है कि प्रातः कालीन निश्चल संसर्ग प्राणों में नवसंचार भर रहा हो। प्रारम्भ में रास्ता एक मील तक सीधा है तत्पश्चात् ढाई मील दुर्गम चढ़ाई है, परन्तु सराहनीय

है कि यात्री श्रद्धाभाव से तथा प्रकृति का सान्निध्य पाकर रास्ते की कठिनाईयों को सहर्ष पार कर जाते हैं। पर्वतीय प्रेदश को देखकर ऐसा लगता है कि मानो प्रकृति रूपी नदी ने समूचे प्रदेश को वन कन्या की भाँति संवारा हो।

विशेष :– मनुष्य और प्रकृति के तादात्म्य का चित्रण है। प्रकृति मनुष्य की चिर सहचरी है। दोनों का आपसी सान्निध्य नवीन ऊर्जा एवं स्फूर्ति का संचार करता है। भाषा सहज, सरल खड़ी बोली हिन्दी है।

4) देखकर सहसा मन खिला नहीं; न भव्य हिम शिखर न हरी–भरी उपत्यका, एकदम तंग घाटी मानो किसी तवस्विनी उपेक्षिता नायिका का आवास हो। दोनों ओर से गगनचुम्बी पर्वतों ने नन्हीं यमुना को यमदूतों के समान घेर रखा था। शायद यह सब इसलिए था कि यमुना यम की बहन है। कहते हैं कि पुरातन काल में असित ऋषि ने इस प्रचण्ड शीतप्रदेश में यमुना के उद्‌गम को खोज निकाला था।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्‌यांश 'गद्यफुलवारी' में संकलित 'जमनोत्री की यात्रा' में से लिया गया है। इसके रचयिता 'विष्णु प्रभाकर' जी हैं।

संदर्भ :– प्रस्तुत पंक्तियों में जमनोत्री के प्रथम दृश्य का मनोहर चित्रण किया गया है।

व्याख्या :– विष्णु प्रभाकर कहते हैं कि जब हमारा यात्री दल दुर्गम चढ़ाई के उपरान्त यमुना के उद्‌गम स्थल पर पहुँचा, तो यमुना मैया के प्रथम दर्शन से मन अत्यधिक प्रसन्नचित नहीं हो सका। यह दैवी स्थल हमारी कल्पना शक्ति के प्रतिकूल था। यहां हमें न भव्य हिम शिखर दिखाई दिये न हरी–भरी उपत्यका अर्थात् ऊँची–ऊँची शृंखलाएं ही दिखाई दीं। एकदम संकरी घाटी थी, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई नायिका तपस्विनी वेश में अपने निवास पर गहन तपस्या में लीन हो। जिसके दोनों तरफ गगनचूंभी पर्वत की चोटियाँ हैं, मानो नन्हीं बालिका को यमदूतों ने घेर रखा हो। यमुना को सूर्य की पुत्री और यमभगिनी अर्थात् यम देवता की बहन माना जाता है। पुरातन काल में यमनोत्री की खोज असित् नामक ऋषि ने की थी। वास्तव में यमनोत्री की खोज असित् ऋषि की देन है।

विशेष :– यमुना के उद्‌गम की पौराणिक कथा का वर्णन है। पर्वतीय प्रदेश के प्रकृति सौंदर्य का चित्रण है। यमुना की तुलना तपस्या में लीन नायिका से की गई है। यमनोत्री की खोज असित ऋषि की देन है। भाषा सहज, सरल, खड़ी बोली हिन्दी है। मानवीकरण अलंकार है।

7.5 शब्दावली

विक्षप्त, नीलाम, उद्‌गार, आत्मचिंतन, अन्तर्द्वन्द्व, विशेषांक, व्यवधान, सत्यनिष्ठ, जनमानस, पौराणिक, पातालगामी, संस्पर्श, प्रसन्नचित, उपत्यका, संकरी, प्रफुल्लित, गर्वोन्मत, संकीर्ण, क्षीण, तपस्विनी वेश।

7.6 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

1. गद्यफुलवारी– सम्पादक डॉ. शहाबुद्‌दीन शेख एवं अन्य, प्रकाशक– राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

'आवाज़ का नीलाम' एकांकी एवं 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत की समीक्षा

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी की समीक्षा

8.4 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत की समीक्षा

8.5 शब्दावली

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी एवं 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत का समीक्षात्मक ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

एकांकी हिन्दी साहित्य की नवीनतम विधा है, जो निरन्तर गतिशील एवं विकासमान रही है। वर्तमान में भागदौड़ भरे जीवन में लम्बे नाटकों को देखने का समय एवं धैर्य दर्शकों के पास नहीं रहा। इसी कारण हिन्दी में कम अवधि तथा एक अंक वाले नाटकों का आरम्भ हुआ। हिन्दी साहित्य के वर्तमान प्रयोगकाल में यथार्थ को भावनात्मक स्तर पर लाकर चित्रित करना और जीवन संगत स्थितियों को प्रामाणिक रूप देकर उनका जीवन से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना एकांकी का मूल विषय है। धर्मवीर भारती कृत 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अनुगूँज है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में यात्रा करता है। जब वह अपने यात्रा के अनुभवों को शब्दों का रूप देता है या वर्णन करता है, तो उसे यात्रा–वृतान्त कहते हैं। यात्रा वृतान्त संसार के प्रत्येक विषय पर लिखे जा सकते हैं। प्राकृतिक दृश्य, तीर्थस्थल, ऐतिहासिक स्थल आदि विषयों पर यात्रा वृतान्त लिखे जाते रहे हैं। लेखक अपनी यात्रा–कृतियों द्वारा देश–विदेश के दृश्यों, रीति–रिवाजों, संस्कृति आदि से गहरा परिचय करवाता है। इससे पाठक का मनोरंजन भी होता है और उनके ज्ञान में वृद्धि होती है। 'जमनोत्री की यात्रा' विष्णु प्रभाकर कृत एक महत्वपूर्ण यात्रा वृतान्त है। इसमें लेखक ने अपनी जमनोत्री यात्रा का वर्णन किया है। यह यात्रा यमुना के उद्गम स्थल तक पहुँचने की है। लेखक ने वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य–नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, लताएँ तथा स्थानीय जन–जीवन का जीवंत वर्णन किया है।

8.3 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी की समीक्षा।

धर्मवीर भारती कृत 'नदी प्यासी थी' एकांकी संग्रह का प्रकाशन सन् 1954 ई० में हुआ। इसमें क्रमशः पाँच एकांकियाँ संकलित हैं– 'नदी प्यासी थी', 'नीली झील', 'आवाज़ का नीलाम', 'संगमरमर पर एक रात' एवं 'सृष्टि का आखिरी आदमी'। सभी एकांकियों के शीर्षक प्रतीकात्मक है। वर्तमान जीवन की भयावहता, यन्त्र युग की विभीषिका एवं व्यवस्था की जटिलता को व्यक्त करते हुए नवीन मूल्यों की ओर संकेत करते हैं। इन एकांकियों में आज़ादी के पश्चात् की ध्वंसात्मक परिस्थितियों एवं मूल्यों के विघटन को विविध पहलुओं से रेखांकित किया गया है।

कथावस्तु :– विवेच्य एकांकी 'आवाज़ का नीलाम' में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अनुगूँज है। इसमें सन् 1947 के बाद का घटना काल चित्रित है। सम्पूर्ण एकांकी में केवल दो पात्र हैं– एक 'दिवाकर' जो समाचार पत्र का मालिक है और दूसरा सेठ बाजोरिया, जो समाचार पत्र 'आवाज़' को खरीदने दिवाकर के पास आता है। एकांकी का कथ्य अत्यन्त संक्षिप्त है। इन दोनों पात्रों के आपसी वार्तालाप तक सीमित है। कथा का आरम्भ संपादक (दिवाकर) के कमरे से शुरू होता है। एकांकी की सभी घटनाएँ, पात्र–परिस्थितियों एवं अंत भी इसी कमरे में होता है। एकांकी का शीर्षक प्रतीकात्मक है। समाचार पत्र 'आवाज़' सत्य, त्याग, तपस्या, साधना और जनसाधारण का प्रतीक है। दिवाकर निडर एवं कर्तव्यनिष्ठ स्वतन्त्र संपादक का प्रतिनिधि है। वह अपने पत्र के माध्यम से समसामयिक यथार्थ को जनता के समक्ष लाने का काम करता है। इसी कारण उसने अपने पत्र का नाम 'आवाज़' रखा है। संपादक की पत्नी बीमार है। वह अस्पताल में भर्ती है परन्तु उसके पास पैसे की कमी है। उसकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि पत्नी के ईलाज के लिए उसे अपने 'अखबार' को बेचना पड़ रहा है। सेठ बाजोरिया 'अखबार' को खरीदने के लिए आता है। वह दिवाकर की मजबूरी का लाभ उठाता है। निरन्तर दस वर्षों की कठोर साधना और अथक परिश्रम के पश्चात् दिवाकर की स्थिति अत्यधिक कारुणिक हैं; उसे पैसों के लिए अपने पत्र को बेचना पड़ता है, ताकि वह पत्नी का उचित ईलाज करवा सके। परन्तु पत्नी की मृत्यु की खबर सूनते ही वह अपना निर्णय बदल देता है। वह अपने दस्तखत किए हुए पत्र सेठ से वापिस लेना चाहता हैं क्योंकि उसे अब पैसों की आवश्यकता नहीं रही; जिस कार्य के लिए रुपये चाहिए थे, वह कारण ही मिट गया। परन्तु उसे कागज तो नहीं मिलते उल्टा पागल करार कर दिया जाता है। बाजोरिया अवसरवादी है वह कागज उठाकर जेब में डालते हुए कहता है, "आप पागल हो गए हैं, वह (अखबार) तो आप बेच चुके हैं बेनामा मेरे पास है।" और भाग जाता है। दिवाकर उसके पीछे भगता है। "हाँ! मैं पागल हो गया हूँ। वह भागते हुए चीखता है, मेरे कागज दे दो मैं 'आवाज़' नहीं बेचूंगा...।" यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाती हैं

पात्र योजना :–

एकांकी नाटक में पात्रों की संख्या बड़े नाटक की अपेक्षा कम होती है। एकांकी के सभी पात्र महत्वपूर्ण होते हैं। बड़े नाटक की अपेक्षा यहाँ प्रधान तथा गौण पात्रों की व्यवस्था नहीं होती। कुछ एकांकी नाटक तो एक पात्री होते हैं। एकांकी नाटक के सभी पात्र मुख्य घटना से जूड़े रहते हैं तथा आरम्भ से अन्त तक कथा में विद्यमान रहते हैं। इस दृष्टि से विवेच्य एकांकी 'आवाज़ का नीलाम' को देखा जाए तो स्पष्ट है। यह एक सफल एकांकी है। धर्मवीर भारती की पात्र योजना इस कसौटी पर खरी उतरती है। एकांकी में मुख्य दो पात्र हैं– समाचार पत्र का संपादक 'दिवाकर' और दूसरा सेठ बाजोरिया। इसके अतिरिक्त दिवाकर की पत्नी शीला, उसकी बच्ची, चैटर्जी और अस्पताल का कोई कर्मचारी तथा गृहमंत्री। ये सभी पात्र केवल नाम मात्र उपस्थित हैं। इनका मुख्य उद्देश्य मुख्य पात्रों के चरित्र–चित्रण तथा कथा में सहयोग देना है।

एकांकी का आरम्भ समाचार पत्र के दफ्तर से होता है। सेठ बाजोरिया पत्र खरीदने आता है और फिर इसी कमरे में दोनों पात्रों के पारस्परिक संवाद के साथ कथा का विकास होता है और अंत भी। एकांकी के अन्य पात्र कथा में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं होते। अस्पताल का कर्मचारी दो बार फोन पर दिवाकर को उनकी पत्नी की स्वास्थ्य संबंधी जानकारी देता है और तीसरी बार उनकी मृत्यु की सूचना भी।

शीला 'दिवाकर' की पत्नी है। वह बीमार है और अस्तपाल में उसका ईलाज चल रहा है। ऑपरेशन के पश्चात् उसकी स्थिति नाजुक है। उसका स्वास्थ्य सुधरने के बजाय ज्यादा गम्भीर हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। शीला एकांकी की तीसरी मुख्य पात्र है और कथा में इसका बार–म–बार जिक्र हुआ है। दिवाकर की बच्ची और गृहमंत्री का मात्रा उल्लेख हुआ है। सन् 1947 में गृहमंत्री कांग्रेस के कार्यकर्त्ता के रूप में जेल जा चुके हैं और वर्तमान में वह गृहमंत्री के पद पर आसीन हैं। आज वह सेठ बाजोरिया के घनिष्ठ मित्र हैं। चैटर्जी सेठ बाजोरिया के समाचार पत्र में संपादकीय लेखन का कार्य करता है। एक बार उसने गृहमंत्री के वक्तव्य पर टिप्पणी लिखी थी। जिस पर बाजोरिया ने उसे अपने कमरे में बुलाकर डाँटा था। तब से यह बाजोरिया के डिक्टेशन के अनुसार ही संपादकीय लिखता है। वस्तुतः सभी गौण पात्र मुख्य कथा और पात्रों के चारित्रिक विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं।

संवाद योजना :– प्रस्तुत एकांकी में धर्मवीर भारती ने संवादात्मक शैली को अपनाया है। संवाद, सरल, सहज, स्पष्ट, प्रभावोत्पादक तथा संक्षिप्त एवं जिज्ञासावर्धक है। उदाहरणस्वरूप दिवाकर और बाजोरिया का संवाद उल्लेखनीय है :–

दिवाकर : मैं सच कह रहा हूँ, बाजोरिया जी! अभी उसका हार्ट फेल हो गया। (गहरी साँस लेकर) अब 'आवाज़' बेचने की जरूरत नहीं।

बाजोरिया : आप पागल हो गए हैं? वह तो आप बेच चुकें...

दिवाकर : कहाँ गए कागजात?

बाजोरिया : (उन्हें जेब में रखकर) आप पागल हो गए हैं।

दिवाकर : (चीखकर) हाँ पागल हो गया हूँ (पियोनो जैसे मारने के लिए उठाकर) सीधे से दे दो वरना....

बाजोरिया : आप पागल.... (दरवाजे की ओर भागता है दिवाकर भी)

दिवाकर : हाँ मैं पागल हो गया हूँ (भागता है, चीखता हुआ) मेरे कागज दे दो, मैं 'आवाज़' नहीं बेचूंगा..

भाव–विचार की गम्भीरता के कारण कहीं–कहीं पर दीर्घ संवाद योजना भी दिखाई देती है। एकांकी के आरम्भिक संवाद कथा की गम्भीरता के कारण दीर्घ हैं। लेकिन लम्बे होने के बावजूद कथा प्रवाह में बाधा उत्पन्न नहीं करते, अपितु कथा की मांगानुसार ही लेखक ने उनका सृजन किया है। अतः कहा जा सकता है कि संवाद योजना की दृष्टि से यह एक सफल कृति है।

देशकाल–वातावरण :– एकांकी में संकलनत्र्य का दृढ़ता से पालन किया जाता है। देशकाल से उस स्थान और समय का अर्थ ग्रहण किया जाता है जिसके आधार पर एकांकी का कथानक निर्मित होता है। जिस समाज की कहानी उसमें ली जाती है उसके लोगों का, उनके रहन–सहन, वेश–भूषा उनकी जीवन पद्धति का यथार्थ चित्र उसमें अंकित होना आवश्यक है। 'देशकाल' तत्व कथा के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सर्वत्र व्याप्त रहता है। इसके उचित नियोजन के लिए उस समाज के सांस्कृतिक जीवन से घनिष्ट परिचय अतिावश्यक है, जिसका कथा में चित्रण किया गया है। एकांकी में पात्रों की वेशभूषा, मंच–सज्जा आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बड़े नाटक में बहुत–सी ऐसी बातें होती हैं जिन्हें संवादों के माध्यम से व्यक्त करने की गुंजाइश होती है यद्यपि एकांकी में यह सम्भव नहीं होता इसलिए यहां मंच की सज्जा और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। विवेच्य एकांकी का परिवेश इसका जीवंत उदाहरण है। कथा का आरम्भिक परिवेश कथा की गम्भीरता का द्योतक है जैसे :–

''आवाज़' संपादक का कमरा। एक तरफ एक तख्त। बड़ी सी मेज पर अखबार, कागज, सोख्ता, पिन–कुशन, ऐशट्रे, टेबल–कैलेंडर वगैरह बहुत अस्त–व्यस्त हालत में....।'' यह अस्त–व्यस्तता दिवाकर के जीवन में व्याप्त है। कथा के आरम्भ से लेकर अंत तक अवसाद की स्थिति बनी रहती है। यह अवसाद की स्थिति तत्कालीन पत्र जगत् की समस्याओं का प्रतीक बनकर उभरी है।

भाषा–शैली :– एकांकी नाटक की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिसे सामान्य दर्शक आसानी से समझ सके। भाव और भाषा के वैशिष्ट्य में ही रचनाकार की विशिष्ट शैली निहित है। यदि भाव और भाषा के उक्त अद्वैत को स्वीकार कर लिया जाए तो कहा जा सकता है कि भाषिक वैशिष्ट्य से ही शैलीगत विशिष्टता का जन्म होता है। प्रत्येक रचना में एक विशेष भाव–संपदा विशेष भाषा में रूप ग्रहण करती है इसलिए हम किसी भी कृति को कवि की मानसिकता के अनुरूप एक नया भाषिक आविष्कार कह सकते हैं।

'अवाज़ का नीलाम' धर्मवीर भारती की उत्कृष्ट रचना है। इसकी भाषा सहज, सरल खड़ी बोली हिन्दी है। इसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। लेखक ने सहजता एवं सरलता से कथानक को स्पष्ट किया है। भाषा पात्रानुकूल है। गम्भीर भाव की अभिव्यक्ति में भाषा गम्भीर रूप ग्रहण कर लेती है। युगीन समस्याओं की अभिव्यक्ति में भाषा प्रतीकात्मक और शैली व्यंग्यात्मक है। इनके व्यंग्य तीखे एवं कटु हैं– ''यथा सांस्कृति स्तर ऊँचा हो? (व्यंग्य से हँसकर) इधर तमाम लोगों की सांस्कृतिक स्तर पर सुधारने की बीमारी लगी है। कोई 'टाइम्स' खरीद रहा है तो

कोई लाइम–लाइट बताइए?'' 'आवाज़' शीर्षक भी प्रतीकात्मक है।

एकांकीकार ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में रोचकता, स्वाभाविकता तथा चमत्कार उत्पन्न हुआ है, जिससे भाषा अत्यधिक प्रभावशाली बन गई है।

उदाहरण :–

– ''आप समझ नहीं रहे हैं कि आप अपने **पैरों पर कुल्हाड़ी मार** रहे हैं।''

– पानी की तरह पैसा बहाना, दाँत पीसना, उछल पड़ना, माथा ठोंकना, अपना ढोल बजाना इत्यादि।

– ''मैं आपका रुपया **एक–एक पाई चुका** दूँगा।।

– इसके अतिरिक्त तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ।

तत्सम– भव्य, विचित्र, विचारक आदि।

अरबी–फारसी :– दरवाज़ा, बैनामा, कसम, जलील, गरजमन्द, हस्ती, मुलायम, अखबार, नवीसी, मर्तबा, अहसान, खामोशी आदि।

अंग्रेजी शब्द :– इन्जेक्शन, फर्नीचर, ऑपरेशन, टवॉय–पियानो, डिक्टेशन, टेलीफोन, पेपरवेट, पिन–कुशन, फाइल आदि।

इसके अतिरिक्त अंग्रेजी वाक्यों का भी हू–ब–हू प्रयोग है– 'माई गॉड', 'माई वाइफ इज डेड।', डैमइट, नर्वस–टेन्शन आदि। जो कथा की गम्भीरता एवं प्रभावोत्पादक क्षमता में वृद्धि करते हैं।

उद्देश्य :– 'आवाज़ का नीलाम' एक सोद्देश्यपूर्ण रचना है। इसमें सन् 1947 के पश्चात् की पत्रकारिता का यथार्थ चित्रित है। एकांकी में पूँजीवादी मूल्यों और पत्रकारिता के आदर्शों का द्वन्द्व चित्रित है। लेखक ने मुख्य पात्र दिवाकर के माध्यम से आदर्श संपादक की विवशता का चित्रण किया है। दो पात्रों–दिवाकर और सेठ बाजोरिया के चरित्र–चित्रण से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के चंगुल में फँसे ईमानदार पत्रकार की लाचारी, बेबसी का भी उद्घाटन किया है। विस्तार के लिए 'आवाज का नीलाम' का उद्देश्य प्रश्न को पढ़ें।

नाटकीयता एवं संकलनत्री :– वर्तमान तनावपूर्ण स्थिति को नाटकीय विधान से ही जीवंत रूप में चित्रित किया जा सकता है। स्थितियों के पीछे की स्थितियाँ, कार्य–व्यवहार, मानसिक–आत्मिक क्रिया–कलाप को अभिव्यक्त करने में नाटकीय विधान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कार्य–व्यापारों को नाटकीयता में प्रस्तुत कर, स्थितियों के अन्तर्विरोध को मूर्त रूप में दिखाया जा सकता है।

नाटकीय विधान की दृष्टि से यह एक सफल एकांकी है। भारती जी ने कथानक में नाटकीय तत्व का पूर्णतः निर्वाह किया है। फलस्वरूप पाठक की जिज्ञासा अंत तक बनी रहती है। कथावस्तु में कौतुहल एवं रोचकता अंत तक पाठक की संवेदनाओं की उद्वेलित करती है।

नाटकीयता से तात्पर्य है– एकाएक कथानक में परिवर्तन। अचानक कथा में नयी कथा का समावेश। कथावस्तु में तनाव अंत तक बना रहता है। पात्रों के आपसी संवाद तनावमयी स्थिति को अधिक गम्भीर बनाते हैं। इस दृष्टि से एकांकी के मुख्य पात्र दिवाकर और सेठ बाजोरिया दोनों के संवाद तनावमयी स्थिति का जीवंत उदाहरण हैं। दोनों के कथोपकथन से स्पष्ट होता है कि दिवाकर बाजोरिया को अपना पत्र नहीं बेचेगा। लम्बी बातचीत के दौरान दिवाकर मन–ही–मन निश्चय कर लेता है कि किसी भी स्थिति में वह अपना पत्र नहीं बेचेगा। परन्तु अचानक कथा में नया मोड़ आता है। टेलीफोन की घण्टी बजती है; दिवाकर फोन उठाता है, उसे सूचना मिलती है कि पत्नी की स्थिति गम्भीर है, ''नाड़ी डूब रही है... बहुत खतरा है... किसी तरह बचाइए उसे डॉक्टर साहब...।'' अपनी पत्नी की हालत् जानकर दिवाकर व्याकुल हो उठता है। बेचैनी और अत्यधिक व्याकुल मनःस्थिति में वह समाचार पत्र की फाइल पर हस्ताक्षर कर देता है। पत्र सेठ बाजोरिया के अधीन हो जाता है। पाठक भी इस घटना को एकांकी के अंत के रूप में स्वीकार कर लेता है। परन्तु कथानक में पुनः नयी कथा का समावेश होता है। पुनः टेलीफोन की घण्टी बजती है। अस्तपाल का कर्मचारी दिवाकर को उनकी पत्नी की मृत्यु की दुखद सूचना देता है। इस कारुणिक स्थिति में दिवाकर शोक व्यक्त करने के बजाय, अत्यधिक उत्साह में जोर–जोर से चिल्लाता है, ''मेरी मुसीबतें खत्म हो गयी दोस्त! मैं अब 'आवाज' नहीं बेचूँगा (दाँत पीसकर) माई वाइफ इज डेड।'' अत्यधिक हृदय विदारक स्थिति। पाठक और संपादक दोनों पूर्णतः आश्वस्त हो जाते हैं कि अब नीलामी नहीं होगी। जिसके लिए उसे पत्र बेचना पड़ रहा था, वह कारण ही समाप्त हो गया, दिवाकर अब पूर्ण लग्न से अपना अखबार चलाएगा, परन्तु पाठक की कल्पना शक्ति जिस अन्त की कामना करती है, परिणाम ठीक विपरीत निकलता है। चुंकि कागज पर हस्ताक्षर हो चुके थे, सेठ कागज उठाकर भाग जाता है। दिवाकर विलाप करता हुआ उसके पीछे–पीछे भागता है, ''मेरे कागज दे दो, मैं 'आवाज' नहीं बेचूँगा...।'' सेठ दिवाकर को पागल कहकर भाग जाता है और एकांकी समाप्त हो जाती है।

वस्तुतः सम्पूर्ण एकांकी अपने नाटकीय तत्व से पाठक के हृदय में कौतुहल पैदा करती है। पाठक की जिज्ञासा अंत तक बनी रहती है। कथा में कहीं भी बोझिलता, नीरसता, एकरसता नहीं आती। सभी संवाद, घटनाएँ, कार्य–व्यवहार एक ही स्थान, एक ही समय और एक ही उद्‌देश्य को प्रतिपादित करते हैं। अतः एकांकी में संकलनत्रयी का पूर्णतः पालन किया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इस एकांकी में बदलते जीवन मूल्यों के सूक्ष्म कथ्य को नाटकी घटनाओं तथा तनावपूर्ण स्थितियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। एक मीटिंग में एक के बाद एक नयी बनती–मिटती तनावपूर्ण स्थितियों द्वारा एकांकी बड़ी क्षिप्र गति से आगे बढ़ती है। एकांकीकार संपादकीय जगत के सूक्ष्म यथार्थ को, तमाम अंतर्विरोधों को रेखांकित करने में सफल हुआ है। शिल्प की दृष्टि से संकलनत्रयी का पालन, इकहरापन तथा एकान्विति इसके नाट्य–व्यापार की गति को क्षिप्र बनाती है। कार्य–व्यापार तथा संवादों का गहरा सम्बन्ध है। वस्तुतः 'आवाज का नीलाम' एकांकी कथ्य एवं शिल्प दोनों धरातल पर धर्मवीर भारती की प्रौढ़ रचना है।

8.4 'जमनोत्री की यात्रा' की समीक्षा।

यात्रा का जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सदैव बड़े–बड़े पर्वत, घनघोर जंगल और तप्त रेगिस्तानों की यात्रा करता आया है। यात्रा के बिना उसका जीवन–निर्वाह

दुर्भर था। अपनी भ्रमणशील प्रवृति के कारण वह यात्रा–क्षेत्र में प्रगति करने लगा। दूर–दूर के स्थानों का भ्रमण करके उसने नयी जानकारियां हासिल कीं, जिससे उसका बौद्धिक विकास हुआ। वह जीवन में प्रगति के पथ पर अग्रसर होने लगा। उसकी विचारधारा भी विकसित हुई।

'यात्रा' शब्द की व्युत्पति या + ष्ट्रन शब्द से हुई है। यात्रा का शाब्दिक अर्थ है– एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में यात्रा करता है। जब वह अपने यात्रा के अनुभवों को शब्दों का रूप देता है या वर्णन करता है, तो उसे यात्रा–वृतान्त कहते हैं। यात्रा वृतान्त संसार के प्रत्येक विषय पर लिखे जा सकते हैं। प्राकृतिक दृश्य, तीर्थस्थल, ऐतिहासिक स्थल आदि विषयों पर यात्रा वृतान्त लिखे जाते रहे हैं। लेखक अपनी यात्रा–कृतियों द्वारा देश–विदेश के दृश्यों, रीति–रिवाजों, संस्कृति आदि से गहरा परिचय करवाता है। इससे पाठक का मनोरंजन भी होता है और उनके ज्ञान में वृद्धि होती है। वास्तव में यात्रा वृतान्त मनोरंजन और ज्ञानार्जन के अतिरिक्त युवाओं को यात्रा के लिए प्रेरित भी करता है। दरअसल, इनके अध्ययन से पाठक घर बैठे लेखक के अर्जित ज्ञान का अनुभव करता है। इस तरह इतिहास और भूगोल के विषय में जहाँ उसके ज्ञान का विस्तार होता है वहीं उसकी रुचि भी परिष्कृत होती है।

मनुष्य ने अभिव्यक्ति के लिए नए–नए रूपों की तलाश की। जिससे साहित्य की अनेक विधाओं का जन्म हुआ। यात्रा वृतांत भी इन्हीं विधाओं–उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र में से एक महत्वपूर्ण विधा है। जिसमें मनुष्य के भोगे हुए यात्रा के अनुभव को कलात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। यहाँ कल्पना से अधिक महत्व यथार्थ को दिया जाता है। अतः बीते हुए यथार्थ का वर्णन होता है। यात्रा के दौरान जिन व्यक्तियों से मुलाकात, दृश्य से साक्षात्कार, घटनाओं एवं समस्याओं का सामना होता है, उनका चित्रण स्वाभाविक रूप में होता है। यात्रा में स्थान बदलने की क्रिया महत्वपूर्ण होती है। यात्रा के अनेक कारण हो सकते हैं। कभी जीविकोपार्जन, तो कभी शैक्षणिक, कभी ज्ञान–विज्ञान की नवीनतम खोज के उद्देश्य से व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे हैं। प्रकृति के सुंदर–मनोहारी रूप ने भी मनुष्य को अपनी ओर खींचा। फलतः उसने नदियों, पहाड़ों और जंगलों की ओर रुख किया। प्रकृति से जुड़ना भी मनुष्य की जिज्ञासा का ही परिणाम है। प्रकृति की सुंदर छवि को निहारने के लिए वह दुर्गम स्थलों की यात्रा पर निकल पड़ा। जीवन के बदलते स्वरूप ने भी यात्रा को बढ़ावा दिया।

'जमनोत्री की यात्रा' विष्णु प्रभाकर कृत एक महत्वपूर्ण यात्रा वृतान्त है। इसमें लेखक ने अपनी जमनोत्री की यात्रा का वर्णन किया है। यह यात्रा यमुना के उद्गम स्थल तक पहुँचने की है। लेखक ने वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य–नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, लताएँ तथा स्थानीय जन–जीवन का जीवंत वर्णन किया है। जमनोत्री से जुड़े पौराणिक, सांस्कृतिक तथ्यों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन में नए–नए अनुभव ग्रहण करने के लिए सदैव व्याकुल रहते हैं, आँखें नित्य–नवीन दृश्य देखने को अतुर रहती है। जब उन्हें गंगा–यमुना की जन्मभूमि की यात्रा का अवसर मिलता है, तो वे अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। वे बड़े मनोयोग से गंगा–यमुना के उद्गम स्थल की कठिन यात्रा का आनन्द लेते हैं।

भारत एक अध्यात्मिक देश है। भारतीय जन मानस की दृष्टि में यहाँ की नदियों का विशेष महत्व है। "सभी देश अपनी नदियों से प्यार करते हैं, लेकिन भारत अपनी 'गंगा–यमुना' को माँ कहकर प्यार ही नहीं करता, उनकी पूजा

भी करता है। इसलिए प्रत्येक वर्ष असंख्य यात्री गंगा–यमुना की कठिन उद्‌गम स्थलों की यात्रा बहुत उत्साह एवं श्रद्धाभाव से करते आ रहे हैं। गंगा–यमुना केवल नदी मात्र नहीं हैं लोग भावात्मक रूप से जुड़े हुए हैं। गंगा को माँ कहकर संबोधित किया जाता है, ''वे पतित–पावनी हमारे पापों को वहा भी ले जाती है.... तभी तो प्रतिवर्ष अनेकानेक भारतवासी अपनी इस ममतामयी माँओं की जन्मभूमि में जाने के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं।'' इन दैवी स्थल पर पहुँचने की तत्परता और हर्ष–उल्लास अनेक यात्रा वर्णनों में दिखाई देता है, परन्तु 'जमनोत्री की यात्रा' इस संदर्भ में विशेष है। यह प्राकृतिक सौंदर्य–वर्णन की दृष्टि से एक उत्तम रचना है।

लेखक बस सुविधा से 'हरिद्वार', 'ऋषिकेश' नरेन्द्र नगर और धरासु होते हुए 'डंडल' गांव तक पहुँचते हैं। मनुष्य ने अपने साधनों के बल पर इन बीहड़ मार्गों पर मोटर चला दी है, परन्तु इससे आगे का मार्ग अत्यधिक कठिन है। यहाँ से यात्रा पैदल शुरू होती है। इस यात्रा का पहला पड़ाव गंगानी चट्‌टी है। गंगानी चट्‌टी की ओर जाते हुए यमुना के प्रथम दर्शन होते हैं। यमुना को कालिन्दी भी कहा जाता है। यमुना सूर्यसुता है और यम देवता की बहन है अर्थात् यमभगिनी के नाम से प्रसिद्ध है। इस यमुना नदी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व है। इसके तट पर कृष्ण ने रास रचाई थी। मुगल सम्राट शाहजहां ने अपने प्रेम का प्रतीक भव्य ताजमहल बनवाया है। लेखक के मन में यमुना के प्रथम दर्शनोपरान्त जिज्ञासा उत्पन्न होती है, इस स्थान का नाम गंगानी क्यों पडा? जबकि यहां तो यमुना नदी का प्रथम दर्शन होता है। स्थानीय लोगों से यामुन ऋषि की कथा सुनकर उनकी जिज्ञासा शांत होती है, ''प्राचीन काल में वहाँ एक ऋषि रहते थे, जो रोज भयंकर राढ़ी पर्वत को पार करके सोलह मील दूर गंगा–स्नान करने जाया करते थे। बुढ़ापे में यह संभव नहीं हुआ तो उन्होंने गंगा की स्तुति की और वह प्रसन्न होकर वहीं एक कुंड में प्रकट हुई।'' इस प्रतीकात्मक कथा के पीछे मनुष्य की प्रबल इच्छा शक्ति और कर्म–निष्ठा का इतिहास छिपा है। लेखक इस कुंड के निर्माता यामुन ऋषि को प्रणाम करके आगे बढ़ते हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से 'जमनोत्री की यात्रा' वृतांत अद्वितीय है। यात्रा के दौरान लेखक को जो अनुभव हुए उनका जीवंत चित्रण मिलता है। प्राकृति का मनोहर वर्णन मानसपल पर गहरा प्रभाव डालता है। ''मीलों तक देवदारु के मनोरम वृक्ष स्वागत में ग्रीवा उठाए खड़े थे। नीचे चारों ओर हरीतिमा बिखरी थी। आकाश भी सुरमई घटाओं से भर उठा। एक ओर देवदारु के कुंज, दूसरी ओर बनवासी श्वेत गुलाब की सुगन्ध, नाना औषधियों का द्रुम दल।. .. देवदारु का शान्त भव्य, ऊपर को उठता और संकीर्ण होता गया। नुकीली अँगुलियों वाला गर्वोन्नत वृक्ष मानो देवमन्दिर हो। यह दृश्य देखकर लेखक का मन रोमांचित हो जाता है। दूर–दूर तक कतारों में खड़े देवदारु के वृक्ष, पक्षियों की चहक, बनवासी फूलों की सुगन्ध, नाना प्रकार की जड़ी–बूटियाँ (औषधियाँ), यमुना का कल–कल संगीत ये सब देखकर उसे प्रतीत होता जैसे तपोवन में आ खड़ा है।

लेखक को एक तरफ प्रकृति सौंदर्य आकर्षित करता है, तो दूसरी तरफ वे यात्रियों द्वारा जगह–जगह गन्दगी फैलाने की समस्या की ओर भी संकेत करते हैं। वह कहते हैं कि ''प्रकृति यहाँ जितनी रुपसी है मानव और उसकी बस्तियाँ उतनी ही गन्दी हैं।'' गरीबी आदमी को माँगने के लिए विवश करती है। ''माँगना आदमी को दीन बनाता है और दीन बनाना मनुष्य को कमजोर बनाता है।'' यही कारण है कि यहाँ की स्त्रियाँ पुश्तैनी कपड़ों में लिपटी सदा काम में व्यस्त रहती हैं, बच्चे यात्रियों से पैसे, बिंदी, सूई–धागा माँगते हैं। औ सेठ पैसा दो सरकार ने हर चट्‌टी पर

शौचालयों का प्रबन्ध किया है, परन्तु धर्मभीरु योगियों का मानना है कि "भला यात्रा में किसी से मल–मूत्र उठवाया जाए?" वे सार्वजनिक शौचालयों का प्रयोग नहीं करते बल्कि खुले में गंदगी फैलाते हैं। जिससे स्थानीय वातावरण अस्वच्छ होता है, दुर्गन्ध फैलती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय लोगों के सहजता, सरलता एवं संवेदनशीलता का भी चित्रण मिलता है। लेखक के अनुसार इन दुर्गम पहाड़ों में रहने वाले लोग उदार हृदय होते हैं। स्नेही और व्यहवार कुशल होते हैं। जब लेखक के दल को धर्मशाला में जगह नहीं मिलती है, तब एक कुमायुँनी महिला उनकी मद्द करती है। वे बहुत कम किराए पर उन्हें अपनी दुकान में रहने की अनुमति देती है। लेखक उसकी उदारता का वर्णन करते हुए कहता है, "उस उदार हृदया पर्वतीय बाला ने हमें सभी सुख–सुविधा देने का पूरा प्रयत्न किया।"

पहाड़ी रास्ते बहुत दुर्गम होते हैं। आकाश–पातालगामी मार्ग से गुजरते हुए, नाना भाँति के द्रुम–दल, लता–वृक्षों का निरीक्षण करते हुए लेखक का दल यमुना चट्टी डाक बंगले पर पहुँचता है। मार्ग इतना कठिन है कि बड़े–बड़े सहासियों के हौंसले पस्त पड़ जाएं। अंधेरी रात, टिमटिमाता लालटेन, कुत्तों के भोंकने का स्वर, खच्चर का हीनहीनाना आदि शब्द निर्जन परिवेश को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। लेखक ने पहाड़ पर लगी आग को कई बिम्बों के माध्यम से चित्रित किया है। "अग्नि कहीं वर्तुल बनती थी, कहीं धनुषाकार रूप धारण करती थी, कहीं एक नया तारों भरा आकाश निर्मित हो गया था। मानो कोई विश्वामित्र–सा प्रचंड तपस्वी नया स्वर्ग रचने की प्रतिज्ञा कर चुका हो।" यमुना चट्टी डाक बंगले से जमनोत्री केवल चार मील दूर है। अगली सुबह तीन बजे लेखक का दल यमुना उद्गम स्थल की ओर निकल पड़ा। प्रातःकालीन वातावरण का हृदय स्पर्शी चित्रण किया गया है। लेखक कहते हैं कि प्रातःकाल की शीतल वायु के स्पर्श से मन प्रफुलित हो उठा। मन–प्राण में ऐसी अपूर्व शक्ति का संचार हुआ कि जंगली जानवरों का सारा भय मन से भाग गया। शुरू में रास्ता एक मील तक सीधा है, उसके बाद ढाई मील की प्राणलेवा चढ़ाई है। परन्तु प्रकृति की अद्वितीय शोभा देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि "प्रकृति नदी ने उस प्रदेश को मानो वन–कन्या की भाँति सँवारा हो।" यात्री गद्गद् स्वर में जयघोष करते लौट रहे थे। अंततः 'जय जय जमुना मैया पार कर दे नैया' का जयघोष करते हुए दल जमनोत्री के उद्गम स्थल में पहुँच गया। पुरातन काल में यमुना के उद्गम की खोज असित् नामक ऋषि ने की थी। एकदम तंग घाटी है और दोनों तरफ गगन–चुम्बी पर्वत खड़े हैं। दोनों पर्वतों के बीच क्षीण काय बहती यमुना का दृश्य अत्यधिक मनोरम है। एक किंवदन्ती के अनुसार बन्दरपुच्छ के 20,732 फीट की ऊँचाई पर स्थित हिमशिखर से यमुना का वास्तविक उद्गम होता है। वहां आज भी हनुमान जी पूजा करते हैं। वहां से दो क्षीण श्वेत धाराएँ नीचे उतरती हैं– कालिन्दी और यमुना। नीचे आते–आते वे दोनों धाराएँ एक हो जाती हैं। सामान्य व्यक्ति का यहां पहुँचना असम्भव है। अधिकांश शीत के कारण लोग यहाँ ठहरते नहीं हैं। इस अगम्य तीर्थ की ऊँचाई लगभग 90,900 फीट है। तीन तप्त कुण्ड यहां का मुख्य आकर्षण हैं। जिसका तापमान लगभग 165 डिग्री के करीब है। इसमें यात्री आलू, चावल उबालते हैं और प्रसाद के रूप में साथ ले जाते हैं। एक छोटा सा श्यामवर्ण यमुना और गौरवर्ण गंगा का आकर्षणहीन मन्दिर है। परन्तु "व्यवस्था और स्वच्छता का यहाँ नितान्त अभाव है।"

विवेच्य यात्रा वृतान्त में लेखक ने प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ–साथ स्थानीय जन–जीवन का भी विशुद्ध चित्रण किया है। स्थानीय भाषा पर लेखकीय टिप्पणी हास्य रस का संचार करती है। पहाड़ी सरल, स्नेही एवं मितभाषी होते हैं। इनकी बोली में कटुता का पुट भी दिखाई देता है। कंडीवालों का यात्रियों के लिए 'चखना', 'माल दिखाओं', 'बाई तेज है' आदि शब्द व वाक्य उल्लेखनीय हैं। 'चखना' का अर्थ है– उठाकर देखना। 'एक बाई तो जवान है, पर दूसरी

तेज है' यहां 'जवान' शब्द का अर्थ 'उचित बोझ' और 'तेज' शब्द का अर्थ है 'भारी'। यह प्रसंग अत्यधिक रोचक है इससे स्थानीय भाषा की भी जानकारी मिलती है।

निष्कर्षतः विष्णु प्रभाकर ने यमनोत्री की यात्रा के दौरान विभिन्न पड़ावों का जीवंत चित्रण किया है। इनका भौगोलिक, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी स्पष्ट किया है। लेखक के साथ–साथ पाठक भी मानसिक रूप से यमनोत्री की यात्रा का जीवंत अनुभव करत है। प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से यह हिन्दी साहित्य की विशिष्ट कृति है।

8.5 शब्दावली

ध्वंसात्मक, भयावहता, अनुगूँज, अवसरवादी, जिज्ञासावर्धक,वृतान्त, जीविकोपार्जन, शैक्षणिक, भ्रमण, दुर्गम।

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'आवाज़ का निलाम' एकांकी पर समीक्षात्मक टिप्पणी करें।

____

____

____

____

____

प्रश्न. 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतान्त पर समीक्षात्मक दृष्टि डालें।

____

____

____

____

____

8.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

1. गद्यफुलवारी– सम्पादक डॉ. शहाबुद्दीन शेख एवं अन्य, प्रकाशक– राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

B.A. HINDI **UNIT-III** **Lesson No. 9**

COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

'आवाज़ का नीलाम' एकांकी एवं 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतान्त का उद्देश्य/प्रतिपाद्य

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी का उद्देश्य/प्रतिपाद्य

9.4 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत का उद्देश्य/प्रतिपाद्य

9.5 शब्दावली

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी एवं 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतांत के उद्देश्य/प्रतिपाद्य से सम्बन्धित ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

एकांकी का प्रस्तुतीकरण मनोरंजक ढंग से जीवन की किसी यथार्थ घटना को प्रस्तुत करना है। विवेच्य एकांकी 'आवाज का नीलाम' सोद्देश्यपूर्ण एक सफल एकांकी है। इसमें 1947 के पश्चात् की राजनीतिक, आर्थिक एवं पत्र जगत का यथार्थ अंकित है। एकांकी में पूँजीवादी मूल्यों और पत्रकारिता के आदर्शों का द्वन्द्व वर्णित है। इसमें दिवाकर के माध्यम से आदर्श संपादक की विवशता का चित्रण किया गया है।

'जमनोत्री की यात्रा' विष्णु प्रभाकर की विशिष्ट रचना है। इसमें लेखक ने जमनोत्री की यात्रा के दौरान हुए अपने अनुभवों का यथार्थ चित्रण किया है। यात्रा के विभिन्न पड़ाव, दुर्गम मार्ग, रोमांचकारी प्रकृति सौंदर्य, स्थानीय जन–जीवन, भाषा– इत्यादि का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत किया है। यात्रा से जुड़ी प्राचीन लोककथाएँ, किंवदंतियाँ,

ऋषि–मुनियों की साधना सम्बन्धी पौराणिक गाथाओं का यथास्थान वर्णन किया गया है

9.3 'आवाज़ का नीलाम' एकांकी का उद्देश्य/प्रतिपाद्य

उद्देश्य :– एकांकी की कथा जीवन के अति निकट होती है। एकांकी का प्रस्तुतीकरण मनोरंजक ढंग से जीवन की किसी यथार्थ घटना को प्रस्तुत करना है। जीवन का वह पहलू जो एकांकी में स्वाभाविक रूप से चित्रित नहीं किया जा सकता, वह एकांकी की परिधि से बाहर है। अतः इसका सोद्‌देश्यपूर्ण होना अनिवार्य है। विवेच्य एकांकी 'आवाज का नीलाम' सोद्‌देश्यपूर्ण एक सफल एकांकी है। इसमें 1947 के पश्चात् की राजनीतिक, आर्थिक एवं पत्र जगत का यथार्थ चित्रित है। एकांकी में पूँजीवादी मूल्यों और पत्रकारिता के आदर्शों का द्वन्द्व चित्रित है। इसमें दिवाकर के माध्‍यम से आदर्श संपादक की विवशता का चित्रण है। केवल दो पात्रों के चरित्र–चित्रण से एकांकीकार ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के चंगुल में फँसे आदर्श पत्रकार की लाचारी, बेबसी के माध्यम से तत्कालीन समस्याओं का भी उद्‌घाटन किया है। दिवाकर 'आवाज़' समाचार पत्र का संपादक है। उसकी पत्नी शीला अस्पताल में बीमारी से जूझ रही है। उसके ईलाज के लिए दिवाकर के पास पैसे नहीं हैं, इसलिए वह अपने पत्र को बेचने के लिए विवश है। उसकी विविशता का सेठ बारोजिया लाभ उठाता है। वह विक्षिप्त मनःस्थिति में दिवाकर से अखबर के कागजात पर हस्ताक्षर करवा लेता है। जिससे पत्र दिवाकर के हाथ से निकल जाता है और सेठ बाजोरिया उसका मालिक बन जाता है।

दिवाकर ने कठोर साधना और अथक परिश्रम से अपने पत्र को निकाला है। इसके लिए उसे घर बेचना पड़ा, अपना खून–पसीना एक कर सरकार से संघर्ष करता रहा, जमानतें दीं। प्रत्येक परिस्थिति में उसने अपने पत्र को प्राथमिकता दी, उसे किसी भी तरह बंध नहीं होने दिया। जब वह पारिवारिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दवाबओं से गुजर रहा था तब किसी भी पूँजीपति एवं सेठ ने उसकी सहायता के लिए हाथ आगे नहीं बढ़ाया। किंतु जब उसे अपनी पत्नी के ईलाज के लिए पैसे हेतु अपना प्राणों से प्रिय पत्र बेचना पड़ता है तो सेठ बाजोरिया बार–बार फोन करके उसका पता पूछता है तथा वह केवल पाँच मिनट में इसे खरीदने के लिए आ जाता है। एकांकीकरण की टिप्पणी ध्यानतव्य है– ''पत्रकार तो जनता की आवाज़ होता है। अगर वही अपनी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता बेचने के लिए मजबूर हो जाय तो देश की इससे बड़ी ट्रेजड़ी और क्या हो सकती है।'' दिवाकर की लाचारी, पीड़ा, वेदना तथा नपुंशक आक्रोश को उसके शब्दों में देखा जा सकता है। दिवाकर अखबार की नीलामी से चिंतित है। वह विक्षिप्त मनःस्थिति में आत्मलाप करता है– ''आज 10 साल से जब मैंने अपनी एक–एक हड्‌डी जलाकर अखबार निकाला, सरकार से लड़ा, जमानतें दी, घर बिक गया, बीवी सूखकर कंकाल हो गई, तब किसी ने दया नहीं दिखाई। मैंने किसी के सामने सिर झूकाना ही नहीं सीखा था। आज जब अखबार बेच रहा हूँ तो दिन में तीन–तीन मर्तबा टेलीफोन से पूछा जाता है। कितनी चिन्ता है सेठ बाजोरिया को। पाँच मिनट में आ रहे हैं।'' विचारणीय है कि परिस्थितिवश किसी भी व्यक्ति की आवाज़ खरीदी जा सकती है, भले ही प्रतिकूल परिस्थिति हो। दस सालों की मेहनत और तपस्या के पश्चात् भी दिवाकर की दयनीय स्थिति है। वह सहानुभूति एवं दया का पात्र है। उसकी वेदना को उसके शब्दों में देखा जा सकता है, ''पाठक वर्ग भी उन्हीं पत्रों में अपनी रूचि रखता है जहां सच से अधिक महत्व शौख कवर, भड़कीले चित्र, रंग–बिरंगे विशेषांक छपते हैं'' लेखक की चिंता है कि जनता सच की आवाज़ नहीं सुनना चाहती, ''उसे सच्चाई की आवाज़ नहीं चाहिए।'' वह सब जो उसे सेठ बाजोरिया के अखबार में मिलता है, वह केवल वही पत्र पढ़ना चाहती

है। जनता इस नए इंसान की आवाज नहीं सुनना चाहती। इस आवाज को जनता तक पहुँचाने के लिए मैंने अपने को बर्बाद कर दिया था, लेकिन पाठक वर्ग की उदासीनता और महंगे पत्रों के प्रति मोह एक बड़ी समस्या है। वास्तव में लेखक ने जनता की समाचार पत्रों के प्रति अरूचि को समस्या के रूप में चित्रित किया है।

लेखक सेठ बाजोरिया जैसे पूँजीपतियों की साहित्य एवं पत्रकारिता संबंधी प्रेम भावना को बखूबी समझता है कि उनका राष्ट्र का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठाने से क्या अभिप्राय है। वह सेठ बाजोरिया की लोभी मनोवृत्ति को भली भाँति जानता है, इसलिए सेठ पर व्यंग्य कसता है–' ''अब तपस्या और साधना के दिन भी तो नहीं रह गये। अब कलम की शान और विचारक की आज़ादी का भी कोई अर्थ नहीं रहा। अब तो आपके पत्र में हूँ तो आपका ढोल बजाऊँ, उसके पत्र में हूँ तो...।'' परन्तु अचानक टेलीफोन की घण्टी बजती है और कथानक में नया मोड़ आता है। उसे जल्दी अस्पताल पहुँचने को कहा जाता है। साथ में दवाईयाँ भी ले आने का आदेश है। उसकी पत्नी की स्थिति अत्यधिक गम्भीर है। उसकी नाड़ी डूब रही है, परन्तु दवाइयाँ और इंजेक्शन ले जाने के लिए उसकी जेब में एक भी रुपया नहीं था। इस स्थिति में उसका अखबार न बेचने का निर्णय भी बदल जाता है और सेठ के प्रति सम्बोधन भी। वह आदर्श की दुनिया से निकलकर कठोर यथार्थ की भूमि पर आ गिरता है। ''आप देवता हैं सेठ जी! मैं पागल हूँ। मैं पागल हो गया था। अखबार आपका है। पहले मैं कागजों पर दस्तखत कर दूँ।'' कथा यहां समाप्त नहीं होती बल्कि एकाएक नाटकीय मोड़ आता है। पुनः टेलीफोन की घण्टी बजती है, दिवाकर चोगा उठता है, और अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार सुनते ही उत्साहित हो उठता है– ''बाजोरिया! बाजोरिया कितना दयावान है ईश्वर! कैसे मौके पर बाँह पकड़ता है। मेरी मुसीबतें खत्म हो गयीं दोस्त। मैं अब 'आवाज' नहीं बेचूँगा। (दाँत पीसकर) माई बाइफ इज डेड।'' अब मैं नहीं बेचूँगा। कहाँ गए कागजात लाओ, उन्हें मुझे वापिस करो। 'शीला की कसम, मैं नहीं बेचूँगा।' अखबार के लालच में सेठ बाजोरिया की सारी संवेदनाएँ ठण्डी पड़ जाती हैं। वह शीला की मृत्यु से आश्चर्यचकित होता है परन्तु उसे संतोष है कि अखबार बिक चुका है। कागज़ उसके पास हैं और वह 'आवाज़' समाचार पत्र का मालिक बन चुका है। दिवाकर को पागल कहकर वह जल्दी से वहाँ से चला जाता है। दिवाकर उसके पीछे भागता है, चिल्लाता है– ''मेरे कागज दे दो मैं आवाज़ नहीं बेचूँगा...।'' लेकिन उसे अखबार के बदले पागल करार दिया जाता है।

आर्थिक अभाव परिश्रमी एवं ईमानदार व्यक्ति को भी झूकने के लिए विवश कर देते है। दिवाकर एक सत्यवादी, कर्मठ तथा ईमानदार पत्रकार है परन्तु पारिवारिक समस्याएँ उसके कर्तव्यपथ पर बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। वह अवसाद की स्थिति में समाचार पत्र के कागज हृदय से लगाकर खुद से वार्तालाप करता है, ''याद है तुम्हें। जब तुम्हारा विशेषांक निकल रहा था और शीला सीढ़ी पर से गिर पड़ी थी, लेकिन मैं उसके पास नहीं था। याद है जब शीला की दवा के रुपये से मैंने सत्तार–प्रेस वाला टाइप खरीद लिया था। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ भूल गया था, अपने को, अपनी फूलों जैसी बच्ची को, अपनी शीला को, महज इसलिए कि तुम मेरी आत्मा की आवाज़ बन सको, मेरी नंगी–भूखी जनता की आवाज बन सको। सत्य की आवाज़ बन सको।'' प्रस्तुत पंक्तियाँ दिवाकर की अन्तर्वेदना की द्योतक हैं।

इन अवसाद के क्षणों में सेठ बाजोरिया दिवाकर के सामने आता है। बाजोरिया को देखकर वह पियानों बजाने लगता है। दिवाकर जब भी परेशान होता है पियानो बजाता है। पियानो का बचकाना स्वर उसकी वेदना का प्रतीक है। अखबारों की खोखली दुनिया के यथार्थ को देखकर ही दिवाकर ने अपना अखबार निकालने का निर्णय लिया था

ताकि सत्य जनता तक पहुँच सके। पूरे दस सालों तक अपने पत्र के द्वारा सत्य जनता तक पहुँचाता रहा। इंसानों की आवाज को अपने पत्र के माध्यम से जीवित रखा, इसलिए रात–दिन कठिन परिश्रम किया। तमाम विघ्नों को सहा और अपने संपादकीय दायित्व का पूर्णतः निर्वाह किया। परन्तु वर्तमान में अर्थ की महत्ता नित्य बढ़ती जा रही है। स्थिति यह है कि अर्थ के शिकंजे में स्वतंत्र अभिव्यक्ति द्वारा जनता की आवाज बुलंद करने वाला भी फंसा है और पूँजीपति भी। विवेच्य एकांकी में बाजोरिया जैसे पूँजीपतियों का चरित्र भी उभरकर सामने आता है और दिवाकर जैसे सद्चरित्र पत्रकार का भी। अर्थ ने पत्रकारिता की स्वतंत्रता का गला घोंट दिया है। पत्रकार की स्वतन्त्रता और संपादक की नैतिकता दोनों खतरे में है। वस्तुतः आज़ादी के पश्चात् स्वतंत्रता क्रूर मज़ाक बनकर उभरी है। यह विडम्बना है कि नैतिक मूल्यों का तीव्रता से ह्रास हो रहा है। धर्मवीर भारती ने वर्तमान कटु सत्य को प्रभावपूर्ण संवाद, मनोभावों, क्रिया–कलापों के द्वारा नाटकीय भंगिमा प्रदान की है।

9.4 जमनोत्री की यात्रा का उद्देश्य/प्रतिपाद्य

'जमनोत्री की यात्रा' विष्णु प्रभाकर की विशिष्ट रचना है। इसमें लेखक ने जमनोत्री की यात्रा के दौरान अपने अनुभवों का यथार्थ चित्रण किया है। यात्रा के विभिन्न पड़ाव, दुर्गम मार्ग, रोमांचकारी प्रकृति सौंदर्य, स्थानीय जन–जीवन, भाषा इत्यादि का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत किया है। यात्रा से जुड़ी प्राचीन लोककथाएँ, किंवदंतियाँ, ऋषि–मुनियों की साधना सम्बन्धी पौराणिक गाथाओं का यथास्थान वर्णन किया गया है, इससे कथावस्तु की प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता स्पष्ट होती है। लेखक ने जीवंत प्राकृतिक दृश्यों–कतार में खड़े विशालकाय देवदारु, लताएँ, नदियों का कल–कल संगीत, हिमशिखर, लालटेन, जलते पहाड़, कुत्तों का भौंकना, खच्चर का हिनहिनाना आदि पाठक के मानस पटल पर मूर्त छाप छोड़ते हैं। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से यह हिन्दी साहित्य की प्रौढ़ रचना है। इसके माध्यम से लेखक ने भारतीय जनमानस की भावनाओं, अदम्य साहस, जीवन शैली आस्था तथा भारतीय संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत की है।

1) जमनोत्री का सांस्कृतिक एवं पौराणिक महत्व :–

लेखक के अनुसार भारत एक अध्यात्मिक राष्ट्र है। यहां की नदियों से लोगों का भावात्मक संबंध है। भारतीय जनमानस नदियों को माँ कहकर संबोधित करता है। लेखक कहते हैं– ''सभी देश अपनी नदियों से प्यार करते हैं लेकिन भारत अपनी 'गंगा–यमुना' को माँ कहकर प्यार ही नहीं करता, पूजा भी करता है। वे पतित पावनी हमारे पापों को बहा भी ले जाती है।'' इसके अतिरिक्त यथास्थान विभिन्न पड़ावों से जुड़े पौराणिक संदर्भों का भी उल्लेख किया गया है। जहां यमुना के प्रथम दर्शन होते हैं, उसे गंगानी क्यों कहते हैं, यमुना का नामकरण कैसे हुआ, असित ऋषि द्वारा यमुना की खोज, तीन तप्त कुण्ठ आदि प्रसंग कथा को अधिक प्रमाणिक बनाते हैं– ''यही है वह काली कालिन्दी जो सूर्य–सुता और यमभगिनी है, जिसके तट पर मोहन ने रास रचनाए थे, जिसके तट पर शाहजहाँ की 'आँखों का आँसू' विश्व का अद्भुत सौन्दर्य 'ताज' खड़ा है।''

2) प्राकृतिक सौंदर्य :– 'जमनोत्री की यात्रा' प्रकृति सौंदर्य की दृष्टि से एक अद्वितीय रचना है। प्रकृति का मनोहर वर्णन मानस पटल पर अनूठी छाप छोड़ता है। लेखक ने यमुना का मानवीकरण किया है। यमुना के प्रथम दर्शन से लेखक गद्गद् हो जाते हैं। यमुना नदी उन्हें एक बाला के रूप में दिखाई देती है। लेखक के अनुसार ''इसी नील

वर्णी, क्षीणकाय, स्वच्छ–शान्त यमुना को देर तक देखता रहा, मानो कोई सुदृढ़ शरीर वाली पर्वतीय बाला प्रीतम की दृष्टि नयनों में भरे आतुर–व्याकुल ऊँचे–नीचे मार्गों पर चली आ रही है।''

देवदारु के दूर–दूर तक कतारों में खड़े वृक्ष, पक्षियों की चहक बनवासी गुलाब के फूलों की सुगन्ध, नाना औषधियाँ, यमुना का कल–कल बहता नीर– इन दृश्यों को देखकर लेखक भाव–विभोर हो जाता है, वे तपोवन का अनुभव करते हैं। जलते हुए पहाड़ का दृश्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है, ''मनो कोई विश्वामित्र–सा प्रचंड तपस्वी नया स्वर्ग रचने की प्रतिज्ञा कर चुका हो।'' वस्तुतः प्रकृति के दोनों रूप–आलम्बन व उद्दीपन का चित्रण मिलता है। प्रकृति मानवी के रूप में चित्रित है।

3) जन–जीवन का चित्रण :–

लेखक के अनुसार पहाड़ी व्यक्ति उदार हृदय होते हैं। वे स्नेही और व्यवहार कुशल होते हैं। लेखक को जब धर्मशाला में रहने के लिए कमरा नहीं मिलता है तब एक कुमायुँनी महिला उनकी मद्द करती है। वे उन्हें रात बिताने के लिए बहुत कम–किराए पर अपनी दुकान दे देती है। लेखक कहते हैं कि ''उस उदार पर्वतीय वाला ने हमें सभी सुख–सुविधा देने का पूरा प्रयत्न किया।'' पहाड़ी प्रदेश की कर्मठता, अदम्य साहस, उदारता, सहजता, स्वाभाविकता के साथ निर्धनता का भी चित्रण किया है। प्रकृति सौंदर्य की दृष्टि से पहाड़ी क्षेत्र जितना अद्वितीय है, स्थानीय बस्तियों में उतनी ही गरीबी है। ''गढ़वाल की नारी पुश्तैनी कपड़ों में लिपटी, सदा की तरह काम में व्यस्त थी और बच्चे हाथ फैलाए माँग रहे थे– ''ओ सेठ पैसा दो।'' लड़कियां बिन्दी माँगती थीं, सुई धागा माँगती थीं।''

इसके अतिरिक्त कंडी वाला प्रसंग स्थानीय भाषा की जानकारी देता है। इससे कथा में हास्य रस का भी संचार होता है। लेखक ने विवेच्य यात्रा वृतान्त में जीवंत समस्या का चित्रण किया है। लेखक पाठक का ध्यान आकृष्ट करते हैं कि इन स्थानों में जो यात्री जाते हैं, वे वातावरण को दूषित करते हैं। वे सार्वजनिक शौचालयों का प्रयोग नहीं करते अपितु खुले में मल–मूत्र त्यागते हैं जिससे पर्यायवरण अस्वच्छ होता है, दुर्गन्ध फैलती है ''व्यवस्था और स्वच्छता का यहाँ नितान्त अभाव है।'' जिस पर सरकार द्वारा संज्ञान अपेक्षित है।

9.5 शब्दावली

प्रस्तुतीकरण, सोद्देश्यपूर्ण, पूँजीवादी, आत्मालाप, आश्चर्यचकित, अवसाद, किंवदंतियाँ, भाव–विभोर, आलम्बन, उद्दीपन।

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न. 'आवाज़ का निलाम' एकांकी के उद्देश्य को स्पष्ट करें।

____

____

____

____

____

प्रश्न. 'जमनोत्री की यात्रा' यात्रावृतान्त के प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालें।

____

____

____

____

____

9.7 संदर्भ ग्रंथ/पुस्तकें

1. गद्यफुलवारी– सम्पादक डॉ. शहाबुद्दीन शेख एवं अन्य, प्रकाशक– राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

B.A. HINDI	**UNIT-IV**	**Lesson No. 10**
COURSE CODE: HI-301		**B.A. Sem-III**

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

10.4 हिन्दी एवं अपभ्रंश का सम्बन्ध

10.5 पश्चिमी हिन्दी का विकास

10.5.1 प्रथमावस्था

10.5.2 द्वितीयावस्था

10.5.3 तृतीयावस्था

10.6 निष्कर्ष

10.7 कठिन शब्द

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.9 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

10.1 उद्देश्य :

इस इकाई में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, मध्यकालीन आर्य भाषा, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के विकास के साथ–साथ आधुनिक युग में हिन्दी के विकास और साहित्यिक भाषा के रूप में उसके उद्भव की चर्चा की गई है। इस विकास क्रम में उर्दू के विकास के साथ–साथ हिंदीत्तर भाषाओं का विकास क्रम भी जुड़ता है। इस इकाई में हमने हिंदी भाषा के विकास क्रम को वैदिक काल से देखने का प्रयास किया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद :

– 'हिन्दी' शब्द की उत्पति को समझना ;

–' वैदिक युग के आरम्भ से ही हिन्दी के विकास क्रम को समझ सकेंगे;

– विभिन्न युगों में साहित्यिक भाषा का उद्‌भव और विकास बता सकेंगे;

– हिन्दी एवं अपभ्रंश के अन्तर को समझ सकेंगे;

10.2 प्रस्तावना :

हिन्दी के उद्‌भव के बारे में पारंपरिक मत यह है कि हिन्दी भाषा का विकास वैदिक संस्कृत > लौकिक संस्कृत > पालि > प्राकृत > अपभ्रंश के क्रम में हुआ। हिन्दी के ज्यादातर भाषा–विज्ञानी भी इसी विचार से सहमति जताते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन करते हुए हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक ग्रंथों में कुवलयामाला कथा (नौंवी सदी), राउलवेल (11वीं), उक्ति–व्यक्ति प्रकरण (12वीं सदी) वर्णरत्नाकर (14वीं सदी), कीर्तिलता (14 वीं), आदि का नाम गिना जाता है और आदिकाल का समय 10वीं सदी माना जाता है। ऐसी स्थिति में सवाल उठना स्वाभाविक है कि हिन्दी भाषा का इतिहास क्या है। इस इकाई में हिन्दी भाषा के उद्‌भव और विकास की यात्रा का अध्ययन बारीकी से करेंगें।

10.3 हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास

हिन्दी शब्द की उत्पति

'हिन्दी' शब्द की व्युतपत्ति प्राचीन भारतीय आर्य–भाषा की किसी धातु या शब्द से नहीं की जा सकती। यह देशज शब्द भी नहीं है। इसका मूल प्राचीन फारसी के 'हेन्दू' या 'हिन्द' शब्द में है। भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा के लगभग समीप सिन्धु नदी बहती है, जिसका उल्लेख वेदों में कई बार आया है। इस विशाल नदी के पश्चिम में ईरानी आर्यों का साम्राज्य था। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की 'स' ध्वनि ईरानी भाषा में 'ह' रूप में परिवर्तित हो जाती है। यथा–सप्त–हप्त,–मास–माह,–असुर–अहुर। अतः इरानी भाषा में 'सिन्धु' शब्द हेन्दू या हिन्दू हो गया। इसी नदी के नाम पर उससे पूर्व के प्रदेश को वे हिन्द कहने लगे। यथा – 'तेगे हिन्द' (हिन्द की तलवार) इसी कारण हिन्द के निवासी हिन्दी या हिन्दवी और उनकी भाषा भी इसी नाम से पुकारी जाने लगी। कालान्तर में हिन्द से व्युत्पन्न शब्द 'हिन्दू' तो इस्लाम से भिन्न वैदिक धर्म को मानने वालों के लिए प्रयुक्त होने लगा जबकि 'हिन्दी' शब्द उत्तर भारत की भाषा तथा भारत के निवासियों के लिए व्यवहार में आने लगा। हिन्दी को कई नामों से संबोधित किया गया है जैसे– भाषा, हिन्दवी, हिंदुई, हिन्दी, खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी आदि। भारत में प्रमुख रूप से आर्य परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं। उत्तर भारत की भाषाएं आर्य परिवार की तथा दक्षिण भारत की भाषाएं द्रविड़ परिवार की हैं। उत्तर भारत की आर्य भाषाओं में संस्कृत सबसे प्राचीन है, जिसका प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में मिलता है, इसी की उतराधिकारिणी हिन्दी है।

भारतीय आर्यभाषाओं के काल को मोटेतौर पर तीन कालखण्ड़ों में विभक्त किया गया है–

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल (1500 ई.पू. से 500 ई. पू. तक)
2. मध्य भारतीय आर्यभाषा काल (500 ई.पू. से 1000 ई. तक)
3. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल (1000 ई.से अब तक)

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत दो भाषाएं थीं। चारों वेद, ग्रंथ, उपनिषद इसी काल की रचना हैं, इनमें भाषा का रूप नहीं है। ऋग्वेद संस्कृत का प्राचीनतम ग्रन्थ है। लौकिक संस्कृत में रामायण, महाभारत आदि लिखे गए। इस काल की भाषा योगात्मक थी, शब्दों में धातु रूप सुरक्षित थे। भाषा में संगीतात्मकता थी। पदों का स्थान निश्चित नहीं था। शब्द में तत्सम शब्दों की प्रचुरता थी। जिस समय संस्कृत व्याकरणों के नियमों से जकड़ी हुई और पूर्णतः साहित्यिक और विद्वद्वर्ग की भाषा हो गई थी, उस समय मध्य भारतीय आर्य भाषाओं का आरम्भ हुआ। इनकों भी कालक्रम से तीन भागों में बाँटा जाता हैः

मध्य भारतीय आर्य भाषाकाल में तीन भाषाएं विकसित हुई :

1. पालि भाषा (500 ई.पू. से 1 ई. तक)
2. प्राकृत भाषा (1 ई.से 500 ई. तक)
3. अपभ्रंश भाषा(500 ई. से 1000 ई. तक)

पालि को मागधी भाषा भी कहा जाता है। यह बौद्ध की भाषा है। बौद्ध साहित्य पालि भाषा में लिखा गया है। त्रिपिटक पालि में लिखे गए हैं। त्रिपटकों के नाम हैं : सुत्त पिटक, विनय पिटक, अभिधम्भ पिटक।

प्राकृत भाषा बोलचाल की भाषा होने के कारण पण्ड़ितों में प्रचलित नहीं थी। संस्कृत नाटकों के अधम पात्र इस बोली का प्रयोग करते थे। जैन साहित्य प्राकृत भाषा में लिखा गया है। प्राकृत भाषा के पांच प्रमुख भेद थे :

1. शैरसेनी प्राकृत : जो मथुरा या शूरसेन जनपद में बोली जाती थी। इसे मध्यदेश की बोली भी कहा गया है।
2. पैशाची प्राकृत : यह उत्तर–पश्चिम में कश्मीर के आसपास की भाषा थी।
3. महाराष्ट्री प्राकृत : इसका मूल स्थान महाराष्ट्र था।
4. अर्द्धमागधी प्राकृत : यह मागधी और शौरसेनी के बीच के क्षेत्र की भाषा थी।
5. मागधी प्राकृत : यह मगध के आसपास प्रचलित भाषा थी।

अपभ्रंश भाषा का प्रयोग 500 ई. से 1000 ई. तक हुआ। इस भाषा को अवहट्, अवहट्ठ, देशभाषा आदि अनेक नामों से पुकारा गया। अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है–बिगड़ा हुआ या गिरा हुआ। जब भाषा का रूप सुसस्कृत न रहकर

बोलचाल का सामान्य रूप हो जाता है तो पण्ड़ितों की दृष्टि में वह भाषा बिगड़ी हुई मानी जाती है और तब वे उसे अपभ्रंश की संज्ञा देते है।

अपभ्रंश भाषा का प्रारम्भ कब से हुआ, इस सम्बध में तीन मत हैं :

1. डॉ. उदयनारायण तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास से अपभ्रंश का जन्म काल 700 ई. स्वीकार किया है।
2. डॉ. नामवर सिंह ने भी अपने ग्रन्थ 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' में अपभ्रंश का जन्मकाल 700 ई. के आस–पास हुआ माना।
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार अपभ्रंश का जन्म 500 ई. के आस–पास हुआ।

अपभ्रंश भाषा का प्रयोग कालिदास के नाटक विक्रमोर्वशीय' में निम्न वर्ग के पात्रों द्धारा किया गया है। छठी शताब्दी के अलंकारवादी आचार्य 'भामह' ने भी अपभ्रंश का उल्लेख संस्कृत एवं प्राकृत के साथ करते हुए इसे काव्योपयोगी भाषा बताया है।

अपभ्रंश का साहित्य में प्रयोग 1200 ई. तक हुआ यद्यपि इसका काल 500 ई. से 1000 ई. तक ही माना जाता है। 1000 ई. के आसपास हिन्दी का प्रयोग साहित्य में प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु कुछ समय तक बाद में भी अपभ्रंश का प्रयोग साहित्य में होता रहा।

आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास इसी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। हिन्दी का विकास भी अपभ्रंश से ही हुआ है। अतः हिन्दी की जननी अपभ्रंश है। उत्तर भारत में अपभ्रंश के सात क्षेत्रीय रूपान्तरण प्रचलित थे, जिनसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का कालान्तर में विकास हुआ। इनका विवरण निम्नवत है :

	अपभ्रंश का क्षेत्रीय रूप	विकसित होने वाली आर्य भाषाएं
1	शौरसेनी अपभ्रंश	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती
2	पैशाची अपभ्रंश	पंजाबी, लंहदा
3	ब्राचड़ अपभ्रंश	सिन्धी
4	खस अपभ्रंश	पहाड़ी
5	महाराष्ट्री अपभ्रंश	मराठी
6	अर्द्धमागधी अपभ्रंश	पूर्वी हिन्दी
7	मागधी अपभ्रंश	बिहारी, उड़िया, बंगला, असमिया

10.4 हिन्दी एवं अपभ्रंश का सम्बन्ध

1. अपभ्रंश का प्रयोग यद्यपि 12वीं शताब्दी तक साहित्य में होता रहा, किन्तु 1000 ई. तक आते–आते हिन्दी बोलचाल की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। अतः हिन्दी भाषा का प्रारम्भ 1000 ई. से हुआ ऐसा मानना तर्कसंगत है।

2. अपभ्रंश में प्रयुक्त तद्भव शब्दों को हिन्दी ने ग्रहण कर लिया।

3. भाषा की प्रवृत्ति कठिनता से सरलता की ओर रहती है। संस्कृत में तीन वचन, तीन लिंग थे, जबकि हिन्दी में दो वचन एवं दो लिंग ही रह गए। संस्कृत में जहां 24 रूप बनते थे वहां हिन्दी में केवल दो रूप रह गए–मूल रूप, विकारी रूप।

4. शौरसेनी अपभ्रंश उस काल की साहित्यिक भाषा थी और गुजरात से लेकर बंगाल तक तथा शूरसेन प्रदेश से लेकर बरार तक इसका एकछत्र साम्राज्य था।

5. हिन्दी ने अपभ्रंश की सारी प्रवृत्तियों को अपनाया है। संस्कृत, पालि, प्राकृत संयोगात्मक भाषाएं थी जबकि अपभ्रंश भाषा वियोगात्मक थी। संज्ञा, सर्वनाम के कारक रूपों के लिए अपभ्रंश में कारक चिह्न अलग से लगने लगे। वही प्रवृत्ति हिन्दी ने भी ग्रहण की है। अपभ्रंश में भी नपुंसकलिंग हिन्दी की तरह नहीं है।

6. काव्य में प्रयुक्त भाषा को अपभ्रंश कहा गया है तथा बोलचाल की तत्कालीन भाषा को देशभाषा कहा गया है।

7. अपभ्रंश के कुछ उदाहरण आचार्य शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में उद्धृत किए हैं, जो पुरानी हिन्दी के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं :

   भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
   लज्जेज तु वयरिस अहु जे भग्गा घर एंतु।।

"अर्थात् भला हुआ जो मेरा कंत युद्ध में मारा गया, है सखी यदि वह युद्ध क्षेत्र से कायरतापुर्वक भागकर घर आता तो मैं सखियों में लज्जित होती।"

आदिकालीन हिन्दी एवं अपभ्रंश का अन्तर–

1. अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ। ये आठों ही मूल स्वर थे। आदिकालीन हिन्दी में दो नए स्वर ऐ, औ और विकसित हो गए जो संयुक्त स्वर थे तथा इनका उच्चारण क्रमशः अऐ, अओ था।

2. च, छ, ज, झ, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे, किन्तु हिन्दी में आकर ये स्पर्श संघर्षी हो गए।

3. न, र, ल, स ध्वनियां अपंभ्रश में दंत्य ध्वनियां थी, जबकि हिन्दी में ये वर्त्स्य ध्वनियां हो गई।

4. अपभ्रंश में ड़, ढ़, ध्वनियां नहीं थी, जबकि हिन्दी में इनका प्रयोग होने लगा।

5. न्ह, म्ह, ल्ह, अपभ्रंश में संयुक्त व्यंजन थे जो हिन्दी में आकर क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हो गए। अर्थात अब ये संयुक्त व्यंजन न रहकर मूल व्यंजन बन गए।

6. संस्कृत, फारसी के कुछ शब्द हिन्दी में आ गए थे जिससे कुछ नए संयुक्त व्यंजन, जो अपभ्रंश में नहीं थे हिन्दी में आ गए।

7. अपभ्रंश एक ऐसी भाषा थी जिसमें क्रिया एवं कारकीय रूप संयोगात्मक होते थे, किन्तु आदिकालीन हिन्दी में वियोगात्मक रूपों की प्रधानता दिखाई पड़ती है।

8. सहायक क्रियाओं एवं परसर्गो का हिन्दी में प्रयोग होने लगा जो उसकी वियोगात्मक प्रकृति का परिचायक है।

9. हिन्दी वाक्य रचना में शब्दक्रम धीरे–धीरे निश्चित होने लगा जो अपभ्रंश में पूर्ववर्ती भाषाओं की भांति अनिश्चित था।

हिन्दी एवं अन्य भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के क्षेत्रीय भेदों से हुआ। इस विवेचन के आधार पर भाषाओं के क्रमिक विकास को निम्न रूप में समझा जा सकता है : वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं।

10.5 हिन्दी भाषा का विकास

हिन्दी भाषा का विकास भी तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। यथा –

10.5.1 प्रथम अवस्था – इस अवस्था में अपभ्रंश और हिन्दी साथ–साथ चल रही थीं। हिन्दी धीरे–धीरे अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयत्न कर रही थी। यह युग ई. सन् 1000 से लगभग ई. सन् 1500 तक माना जाता है। भाषा विकासक्रम के अध्ययन की प्रक्रिया से स्पष्ट हो पाया है कि इस बिन्दु पर अपभ्रंश भाषा केंचुल उतारकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में ढलना प्रारम्भ कर देती है। हिन्दी भाषा की विकास दृष्टि से इस काल को 'संक्रातिकाल' कहा जा सकता है क्योंकि इस समय अपभ्रंश भाषा अपना स्वरूप परिवर्तित कर रही थी। सन् 1000 ई. से 1200 ई. तक का समय विशेष रूप से इस सन्दर्भ में लक्षित किया जा सकता है। इस काल के अपभ्रंश को 'अवहट्ट' नाम दे दिया गया है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इसे 'पुरानी हिन्दी' भी कहा है। तात्पर्य यह है कि हिन्दी भाषा इस समय अपने निर्माण की प्रक्रिया से गुजर रही थी। इस युग में हिन्दी की तीन शैलियाँ देखने को मिलती हैं –

1) **डिंगल शैली –** जिसमें दिल्ली तथा राजस्थान के राजपूत राजाओं के आश्रित कवि, चारण तथा भाट रचना करते थे। 'डिंगल' शब्द कदाचित 'पिंगल' के विरोध में उस काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसमें काव्यशास्त्र के नियमों की अवहेलना की गई है। अपभ्रंश भाषा के ब्रजभाषा मिश्रण से 'पिंगल शैली' का जन्म हुआ। 'डिंगल' काव्य में मूलतः राजस्थान और दिल्ली के आस–पास की जन–सामान्य की भाषा है, किन्तु उसे वीर–रसमय बनाने के लिए अपभ्रंश का पुट दे दिया गया है। इस शैली में 'पृथवीराज–रासो' प्रमुख ग्रन्थ है। इसकी प्रमाणिकता संदेहास्पद है। भाषा में भी राजस्थानी, ब्रज, खड़ी बोली और अपभ्रंश का मिश्रण है। इसी शैली में बीसलदेव रासो, खुमान रासो भी लिखे गए

हैं। 'आल्हा खण्ड' भी इस युग का ही माना जाता है। किन्तु गेय होने के कारण भाषा का स्वरूप निर्धारण करने में सहायता नहीं पहुँचा सकता।

2) **दूसरी शैली साधु**–सन्तों की थी। यह शैली साहित्यिकतावर्जित, व्याकरणसम्मत तथा छंद के नियमों से रहित थी। पढ़े–लिखे सन्तों; जैसे– गोरखनाथ, रामानन्द आदि की वाणी में स्थिरता पाई जाती है। इस शैली का आरम्भ चौरासी सिद्ध और नाथपंथियों से होता है और अन्त कबीर, नानक आदि से। यह साधु–सन्त देश के भिन्न–भिन्न भागों में भ्रमण करते थे अतः इनकी भाषा में एकरूपता ढूँढ़ना व्यर्थ है। इन सन्तों की भाषा की आरम्भिक अवस्था में अपभ्रंश का पुट अधिक है, किन्तु क्रमशः कम होता गया है और निर्गुण सन्तों की भाषा में बहुत कम हो गया है तथा हिन्दी अपने स्वरूप में पर्याप्त मात्रा में निखर चुकी है।

3) **तीसरी शैली असाम्प्रदायिक कवियों की भाषा खड़ी बोली है।** इसमें बनाबटीपन नहीं है, न अपभ्रंश का प्रभाव है, न अन्य बोलियों का अनावश्यक मिश्रण। दिल्ली के समीप की दैनिक भाषा का प्रयोग किया गया है। उसी काल में मैथिल कवि विद्यापति भी हुए हैं। उनकी भाषा मैथिली होते हुए भी हिन्दी के समीप है, अतः विद्यापति को हिन्दी–कवियों में स्थान दिया जाता है।

10.5.2 द्वितीयावस्था – हिन्दी के विकास का दूसरा युग 16वीं शताब्दी के आरम्भ से 19वीं शताब्दी तक चलता है। इस युग के आरम्भ में भक्तिधारा का प्राबल्य रहा है। खड़ीबोली व्यावहारिक भाषा अवश्य थी, किन्तु उसमें काव्य रचना न मुसलमान करते थे, न हिन्दू। हिन्दू खड़ीबोली को मुसलमानों से सम्बन्धित भाषा समझते रहे। कृष्ण–भक्ति आन्दोलन का केन्द्र ब्रज–प्रदेश था, अतः ब्रजभाषा काव्य–भाषा बन गई। कई मुसलमान कवि– रहीम, रसखान भी ब्रज में कविता करने लगे। सूर आदि अष्टछाप के भक्त कवियों तथा अन्य भक्तों ने व्यावहारिक ब्रजभाषा में ही रचनाएँ कीं। तुलसी ने भी कवितावली, विनय–पत्रिका, गीतावली आदि रचनाएँ ब्रजभाषा में कीं। बिहारी आदि भक्तिधारा से असम्बन्धित श्रृंगारी कवियों ने भी आगे चलकर ब्रजभाषा को ही अपनाया। पूर्वी हिन्दी प्रदेशों में प्रेमाख्यान काव्यकारों ने दोहा–चौपाई शैली को जन्म दिया, अतः जायसी का 'पद्मावत' और तुलसी का 'रामचरितमानस' इसी शैली में लिखे गए, किन्तु ब्रजभाषा का प्रभाव इतना बढ़ा कि अन्त में सर्वत्र ब्रजभाषा ही साहित्यिक भाषा हो गई। ब्रजभाषा–क्षेत्र बंगाल तक फैल गया। वहाँ भी ब्रजभाषा मिश्रित बंगला 'ब्रजबुली' के नाम से पुकारी जाने लगी और उसमें भक्ति–सम्बन्धी साहित्यिक रचनाएँ होने लगीं।

खड़ीबोली में दक्षिण में बसे हुए मुसलमानों द्वारा काव्य–रचना आरम्भ हुई। इसमें अरबी–फारसी शब्दों का बाहुल्य था। दक्षिण में हिन्दी की इस शैली में कविता करने वाले सर्वप्रथम कवि 'वली' थे। उत्तर भारत में अरबी–फारसी शब्दावली से लदी हुई काव्य–रचना शाहजहाँ के समय से आरम्भ हुई। एक ओर रीतिकालीन कवि ब्रजभाषा में श्रृंगारी रचना कर रहे थे और भाषा को कोमल–कान्त पदावली से सुसज्जित कर रहे थे, दूसरी ओर मुगल–दरबार में बादशाहों, शाहजादों तथा बड़े–बड़े दरबारियों की छत्रछाया में उर्दू नामक कृत्रिम शैली जन्म ग्रहण कर रही थी, जिसमें कवि अपने आश्रयदाताओं की श्रृंगारी भावना की तृप्ति के लिए कविता कर रहे थे। धीरे–धीरे यह शैली विकसित होती चली गई और 18वीं तथा 19वीं सदी में उर्दू में मीर, गालिब, इंशा, जौक, दाग आदि प्रसिद्ध कवि उतपन्न हुए।

10.5.3 तृतीयावस्था – आधुनिक काल हिन्दी–भाषा–भाषी क्षेत्र पर अंग्रेजी शासन की स्थापना से आरम्भ होता है। मुसलमान जो पहले शासक रह चुके थे, अब साधारण समाज का अंग बन गए। अरबी फारसी केवल धार्मिक भाषाएं रह गईं। मुसलमानों की व्यवहारिक भाषा में दो चार शब्द अरबी–फारसी के अधिक होते थे किन्तु इससे हिन्दू मुसलमानों को एक दूसरे को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। नागरिक हिन्दुओं की भाषा भी खड़ी बोली हुआ करती थी। साहित्यिक मुसलमान उर्दू (खड़ी बोली) में कविता करते थे। अंग्रेज़ों ने भी अपने दैनिक कर्मचारियों के दैनिक व्यवहार के लिए खड़ी बोली को ही अपनाया और उसके लिए 'हिन्दुस्तानी' नाम स्वीकार किया। उन्होंने हिन्दी (खड़ी बोली) में पुस्तकें छपवाईं। हिन्दी (खड़ी बोली) में गद्य परम्परा चल पड़ी। कविता अभी तक ब्रज भाषा में ही होती रही, किन्तु धीरे–धीरे काव्य क्षेत्र पर भी खड़ी बोली का अधिकार हो गया। 20वीं शताब्दी के आरम्भ से ही हिन्दी (खड़ी बोली) में उच्चकोटि की रचनाएं आरम्भ हो गईं।

वर्तमान काल में हिन्दी, जिसका तात्पर्य हिन्दी खड़ी बोली से है, संस्कृत शब्दावली की ओर अधिक झुक गई। इसका प्रथम कारण हिन्दी का पारिभाषिक शब्दावली के लिए संस्कृत का मुखापेक्षी होना है। दूसरी बात यह है कि संस्कृत से हिन्दी का सांस्कृतिक तथा माता पुत्री का संबंध ही नहीं है, बल्कि दोनों की लिपि भी एक है। तीसरा कारण राजनीतिक है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात सर सैयद जैसे मुसलमान नेताओं ने मुसलमानों को अंग्रेजों का हितेशी सिद्ध करने का प्रयास किया। दोनों जातियां जो एक दूसरे के निकट आ गई थी, दूर होने लगी। मुसलमानों ने अपने विचारों को प्रकट करने के लिए व्यवहारिक भाषा खड़ी बोली में अरबी–फारसी शब्द भरकर कृत्रिम भाषा उर्दू को ही अपनी भाषा समझना आरम्भ कर दिया।

दूसरी ओर हिन्दुओं में भी पुनरूत्थान–काल आरम्भ हो गया। उनमें भी आत्मगौरव का भाव भरने के लिए कई महापुरूष प्रयत्नशील हुए। उन्होंने हिन्दुओं का ध्यान अपनी प्राचीन संस्कृति की ओर आकर्षित किया। उनमें भी संगठन द्वारा भारत को स्वतंत्र करने की आकांक्षा जगी। वे अपनी संस्कृति को संगठन का आधार बनाने लगे। संस्कृत का पठन–पाठन और अध्ययन बढ़ा, और हिन्दी में संस्कृत के शब्द स्वाभाविक रूप से आने लगे। द्विवेदी युग के कवियों में एक दो को छोड़कर यह प्रवृति सीमित रही। किन्तु छायावादी कवियों ने अपने सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए संस्कृत का इतना अधिक सहारा लिया कि उनकी भाषा जनसामान्य से दूर हो गई। जब प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी व्यवहारिक भाषा का प्रयोग करने लगे हैं किन्तु उनमें दोष यह है कि भाषा की एकरूपता का ध्यान ही नहीं रखते। गद्य में हिन्दी का स्वरूप स्थिर हो गया किन्तु पद्य में भाषा का स्वरूप अस्थिर है।

साधारण समाज का अंग बन गए। अरबी फारसी केवल धार्मिक भाषाएं रह गईं। मुसलमानों की व्यवहारिक भाषा में दो चार शब्द अरबी–फारसी के अधिक होते थे किन्तु इससे हिन्दू मुसलमानों को एक दूसरे को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। नागरिक हिन्दुओं की भाषा भी खड़ी बोली हुआ करती थी। साहित्यिक मुसलमान उर्दू (खड़ी बोली) में कविता करते थे। अंग्रेज़ों ने भी अपने दैनिक कर्मचारियों के दैनिक व्यवहार के लिए खड़ी बोली को ही अपनाया और उसके लिए 'हिन्दुस्तानी' नाम स्वीकार किया। उन्होंने हिन्दी (खड़ी बोली) में पुस्तकें छपवाईं। हिन्दी (खड़ी बोली) में गद्य परम्परा चल पड़ी। कविता अभी तक ब्रज भाषा में ही होती रही, किन्तु धीरे–धीरे काव्य क्षेत्र पर भी खड़ी बोली का अधिकार हो गया। 20वीं शताब्दी के आरम्भ से ही हिन्दी (खड़ी बोली) में उच्चकोटि की रचनाएं आरम्भ हो गईं।

10.6 निष्कर्ष :

'हिन्दी' शब्द अपने विस्तृतम अर्थ में हिन्दी–प्रदेश में बोली जाने वाली 17 बोलियों का द्योतक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है जहाँ ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, खड़ी बोली आदि सभी में लिखित साहित्य का विवेचन किया जाता है। वस्तुतः अब हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूरा उर्दू तथा दक्खिनी को मिलाकर हिन्दी 17 बोलियों, उर्दू तथा दक्खिनी को अपने अंतगर्त समाहित किए हुए है।

10.7 कठिन शब्द :

विद्वद्वर्ग, रूपान्तरण, प्रतिष्ठित, तत्कालीन, उदधृत, प्रमाणिकता, व्यवहारिक, मुखापेक्षी, प्रवृति, पुनरूत्थान, अकांक्षा।

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्नः

1. हिन्दी भाषा के उद्‌भव पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

2. हिन्दी शब्द की उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए हिन्दी के विकास पर विचार कीजिए।

____

____

____

____

____

3. हिन्दी एवं अपभ्रंश के अन्तर को स्पष्ट करिए।

____

____

____

____

____

4. हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि पर प्रकाश डालें।

____

____

____

____

____

10.9 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. उदयनारायण तिवारी , भाषाशास्त्र की रूपरेखा।
2. भोलानाथ तिवारी , भाषाविज्ञान।
3. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा।
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास।
5. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की ध्वलि संरचना।
6. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की संरचना।
7. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी।
8. उदयनारायण तिवारी, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास।

B.A. HINDI	**UNIT-IV**	**Lesson No. 11**
COURSE CODE: HI-301		**B.A. Sem-III**

हिन्दी का क्षेत्र और उसकी प्रमुख बोलियां

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 हिन्दी की बोलियों का सामान्य परिचय

11.3.1 हिन्दी का क्षेत्र

11.3.2 हिन्दी की बोलियाँ

11.3.2.1 पश्चिमी हिन्दी

11.3.2.1.1 खड़ी बोली

11.3.2.1.2 हरियाणवी

11.3.2.1.3 ब्रज

11.3.2.1.4 बुन्देलखण्ड़ी

11.3.2.1.5 कन्नौजी

11.3.2.1.6 दक्खिनी

11.3.2.2 पहाड़ी

11.3.2.3 पूर्वी हिन्दी

1.3.2.4 बिहारी

11.4 निष्कर्ष

11.5 कठिन शब्द

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.7 सन्दर्भग्रन्थ /पुस्तकें

11.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में आप :

1. हिन्दी की बोलियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगें।
2. हिन्दी की बोलियों की उपबोलियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगें।
3. हिन्दी की बोलियों के क्षेत्र से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

11.2 प्रस्तावना :

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं, भारत में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती, भोजपुरी, हरयाणवी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, मैथिली, खरोठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यन्त उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं जो न केवल अपने में एक बड़ी परम्परा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन् स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी रचना संसार सचेत है। मौटे तौर पर हिन्द की किसी भाषा को हिन्दी कहा जा सकता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था, पर वर्तमान काल में सामान्यतः इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड की भाषा के लिए होता है जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलजुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण–पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है।

11.3 हिन्दी की बोलियों का सामान्य परिचय

11.3.1 हिन्दी का क्षेत्र : हिन्दी भारत के बहुत बड़े भू–भाग की मातृभाषा, व्यवहार–भाषा, सम्पर्क–भाषा और साहित्यिक भाषा है। भारत के सात राज्यों (दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश) में इसे राजभाषा का तथा कई राज्यों में द्वितीय भाषा का दर्जा प्राप्त है। राष्ट्रभाषा के रूप में तो भारत के सभी (अहिन्दी–भाषी तमिल–नाडु, केरल आदि और अर्धहिन्दी–भाषी पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात आदि) राज्यों का आधिकारिक पत्राचार हिन्दी में अपेक्षित है। भारत से बाहर भी, हिन्दी को भारत एवं अन्य देशों के मध्य सम्पर्क–भाषा बनने का अवसर उपलब्ध है। नेपाल और मॉरिशस के अतिरिक्त रूस, अफ्रीका, जर्मन तथा अन्य कई यूरोपीय देशों में भी हिन्दी शिक्षा, पत्राचार एवं साहित्य का माध्यम है। हिन्दी के प्रयोक्ता–वर्ग की संख्या इस समय सत्तर करोड़ के आस–पास पहुँच चुकी है।

भारत में हिन्दी का क्षेत्र सुदूर पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर–पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में जम्मू–ऊधमपुर से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पश्चिम–पूर्व में भागलपुर, दक्षिण–पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण में खंडवा तक व्याप्त है।

11.3.2 हिन्दी की बोलियाँ : वर्तमान हिन्दी मूलतः खड़ी बोली का ही विकसित और परिनिष्ठित रूप है। भारत के भाषा–इतिहास और हिन्दी के उद्गम तथा विकास की दृष्टि से खड़ी बोली 'पश्चिमी हिन्दी' वर्ग की एक बोली है जो विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक कारणों से अब एक समृद्ध साहित्यिक भाषा ही नहीं, राष्ट्रभाषा और राजभाषा बन चुकी है तथा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की प्रक्रिया की ओर अग्रसर है। (सन् 1978 ई० में संयुक्त राष्ट्र संघ में तथा अप्रैल 1984 ई० में उससे भी आगे– अन्तरिक्ष में खड़ी बोली (मानक) हिन्दी अपना अस्तित्व स्थापित कर चुकी है।) इसका अभिप्राय यह है कि हिन्दी में 'पश्चिमी हिन्दी' की बोलियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके अन्तर्गत खड़ी बोली (प्राचीन नाम 'कौरवी') के अतिरिक्त हरियाणवी, दक्खिनी, ब्रज, बुंदेली, कन्नौजी, आदि समाविष्ट हैं ।

'पश्चिमी हिन्दी' की सर्वाधिक निकटवर्तिनी अन्य बोलियाँ हैं– 'राजस्थानी' और 'पहाड़ी'। 'राजस्थानी' के अन्तर्गत क्रमशः मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी तथा 'पहाड़ी' के अन्तर्गत कुमाऊंनी और गढ़वाली (पूर्वी पहाड़ी) के अतिरिक्त, पश्चिमी पहाड़ी के नाम उल्लेखनीय है।

'पहाड़ी हिन्दी' के क्षेत्र से थोड़ा आगे बढ़ें तो पूर्वी हिन्दी की बोलियों के क्षेत्र आ जाते हैं जिनमें अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी प्रमुख हैं। इन्हीं के साथ लगती हुई बोलियाँ 'बिहारी' की हैं, जिनमें भोजपुरी, मगही और मैथिली प्रमुख हैं ।

इस प्रकार 'हिन्दी' की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं– (1) पश्चिमी हिन्दी, (2) राजस्थानी, (3) पहाड़ी, (4) पूर्वी हिन्दी, (5) बिहारी। इनका संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

11.3.2.1 पश्चिमी हिन्दी

इसका केन्द्र दिल्ली है। साथ ही पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पश्चिमोत्तर एवं पूर्वी हरियाणा के क्षेत्र की यह प्रधान बोली है। इसके अन्तर्गत पाँच बोलियाँ हैं– खड़ी बोली, ब्रज, हरियाणवी (बांगरू), बुंदेली, कन्नौजी और दक्षिणी।

खड़ी बोली का मूलक्षेत्र दिल्ली, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, फरीदाबाद, मेरठ, सहारनपुर, मुरादाबाद, बिजनौर और देहरादून है।

हरियाणी का एक अन्य नाम 'बांगरू' भी है, क्योंकि हरियाणा का पुराना नाम 'बांगर' (बांगड़) प्रदेश है। यह अधिकतर करनाल, रोहतक, जींद, सोनीपत आदि जिलों में बोली जाती है।

ब्रज किसी समय हिन्दी–साहित्य का प्रधान माध्यम थी। मध्यकालीन भक्ति–काव्य का अथाह भंडार इसमें है। अब इसका क्षेत्र हरियाणा के जिला गुड़गाँव के कुछ क्षेत्र (वल्लभगढ़, पलवल, होडल), तथा उत्तर प्रदेश के मथुरा, आगरा, अलीगढ़ आदि में सीमित है।

11.3.2.1.1 खड़ी बोली

'खड़ी बोली' को अब 'उपभाषा' या 'बोली' कहना असंगत है। बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी में यह अवश्य एक सीमित बोली थी। तब इसका नाम 'कौरवी' था। इसका क्षेत्र दिल्ली, आगरा, मेरठ, अम्बाला आदि के आस–पास था। धीरे–

धीरे यह उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब (जिसमें वर्तमान हरियाणा भी था), हिमाचल आदि क्षेत्रों तक फैल गई। कुछ राजनीतिक तथा ऐतिहासिक कारणों से इसका शब्द–भंडार बढ़ता गया। इसकी अनेक शैलियाँ विकसित हुईं। पंद्रहवीं शताब्दी से दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में 'दक्षिणी हिन्दी' के नाम से इसका प्रसार हो गया।

इस 'कौरवी' बोली को 'खड़ी बोली' नाम अठारहवीं शताब्दी के बाद (सन् 1801 से) प्राप्त हुआ। 'खड़ी' का अभिप्राय है– खरी, शुद्ध, स्थिर, परिनिष्ठित। वास्तव में अंग्रेजी के Sterling, Standing और Standard शब्दों के पर्याय के रूप में ही 'खड़ी' शब्द इस 'बोली' (Dialect) के साथ जुड़ गया। तब यह 'बोली' न रहकर 'भाषा' बन गयी, परंतु इसका नाम अब तक भी 'खड़ी बोली' रूढ़ और प्रचलित है। अब तो वास्तव में इसका पर्याय 'हिन्दी' है, जो न केवल राष्ट्रभाषा अपितु राजभाषा भी है। इसका अपना व्याकरण तथा अत्यंत समृद्ध साहित्य–भंडार है। भारत की, विशेषतया हिन्दी की सभी बोलियों में से यही एक ऐसी बोली है जो बहुत कम समय में विकसित होकर, समूचे ज्ञान–विज्ञान, काव्य, शास्त्र, शिक्षा, प्रशासन, व्यवसाय–प्रौद्योगिकी आदि का माध्यम बन गई। आज समस्त हिन्दी–भाषियों और भारत के अधिकांश क्षेत्रों का आधिकारिक कार्य–कलाप इसी में हो रहा है। भारत के अतिरिक्त कई अन्य देशों में भी यह शिक्षा, साहित्य और व्यावहारिक कामकाज का माध्यम है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर खड़ी बोली को अब हिन्दी की उप–भाषाओं में या बोलियों में नहीं गिनना चाहिए।

11.3.2.1.2 हरियाणवी

इस बोली का क्षेत्र हिसार, रोहतक, करनाल, जींद, महेन्द्रगढ़, फरीदाबाद और रेवाड़ी तथा इनके आस–पास का है। यह सभी क्षेत्र 'हरियाणा' के अन्तर्गत आते हैं, इसीलिए इस बोली को 'हरियाणवी' कहा जाता है।

'हरियाणवी' का पुराना नाम 'बांगरू' है, क्योंकि सन् 1956 ई० में 'हरियाणा' राज्य की अलग स्थापना से पहले यह वृहत्तर पंजाब का अंश था। इस क्षेत्र में, पंजाब के अन्य स्थानों की अपेक्षा ऊँची–नीची, बंजर और शुष्क धरती अधिक थी, जिसे 'बांगरू' कहा जाता था। उसी से यहाँ की बोली का नाम 'बांगरू' प्रचलित हुआ।

इस क्षेत्र में अधिकतर आबादी जाट–समुदाय के लोगों की है। सामान्यतः वही इस बोली का प्रयोग करते हैं। इसलिए बोलचाल में 'हरियाणवी' अथवा 'बांगर' बोली को 'जादू' बोली भी कह दिया जाता है।

यह बोली मूलतः प्राचीन 'कौरवी' की ही एक उपशाखा है। इस पर ब्रज, राजस्थानी और खड़ी बोली का पर्याप्त प्रभाव है। संज्ञाएँ और क्रियाएँ प्रायः आकारान्त हैं। उनके अन्त में 'आ' बोला जाता है। जैसे– छोरा के कर रह या से ।

भई, **घोड़ा** लैजो होवै तौ **पीसा** तौ लागेंगे ई।

'**हरियाणवी**' में 'न' का उच्चारण 'ण' में करने की विशेष प्रवृत्ति है–

ए छोरी! **पाणी** लै आवै **णा**!

ई **कूण** गी गाड्डी सै?

उपर्युक्त दूसरे उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि 'हरियाणवी' में मूर्धन्य ध्वनियों को द्वित्व (दोहरे) रूप में बोलने की प्रवृत्ति है।

मध्यम पुरुष सर्वनाम प्रायः ('तू' या 'तुम' के बजाय) तैं, तम (बहु– वचन) बोला जाता है।

तैं कद जावैगा ?

तम कद जावौगे ?

इन उदाहरणों से पता चलता है कि 'हरियाणवी' पर पंजाबी ('कब' को कद) का पर्याप्त प्रभाव है।

'हरियाणवी' बोली की ध्वनि–संरचना तथा रूप (शब्द और पद)– संरचना का एक सामान्य आभास कराने के लिए कुछ उदाहरणों पर दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा। (ध्यान रहे कि 'वाक्य–संरचना' की दृष्टि से मानक हिन्दी (खड़ी बोली) और हरियाणवी में कोई अंतर नहीं, क्योंकि इसमें (बल्कि हिन्दी की सभी बोलियों में, वाक्य–संरचना का स्वरूप एक–सा है। कर्त्ता, कर्म, क्रिया का अनुक्रम, विशेषण का विशेष्य और क्रिया–विशेषण का क्रिया से पहले प्रयोग तथा लिंग–वचन–कारक आदि की व्यवस्था एक समान है। अंतर है तो ध्वनियों और शब्दों के संरचनात्मक स्वरूप में।)

मानक हिंदी (खड़ी बोली)	**हरियाणवी**
मैं किताब पढ़ता/पढ़ती हूँ ।	मैं किताब पढ़ूँ सूँ ।
तू किताब पढ़ता/पढ़ती है।	तैं किताब पढ़ै सै ।
लड़के किताब पढ़ रहे थे।	छोरे किताब पढ़ रिहे थे।
लड़के किताब पढ़ते थे ।	छोरे किताब पढ़ैं थे ।
मैंने यह किताब पढ़ी।	मन्ने जे किताब पड्ढ़ी।
लड़का बोला।	छोरा (छोह् रा) बोल्या ।
वह कचहरी जा रहा है।	ओह् कचैरी जा रिहा सै।
मुझे क्या पता है ?	मन्ने के बेरा सै ?
तुम क्या कर रहे हो ?	तम कै कर रिहे सौ ?

11.3.2.1.3 ब्रज

आगरा, मथुरा, हाथरस, अलीगढ़, खुर्जा, बुलन्दशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूँ, बरेली आदि के आस–पास का विशाल क्षेत्र 'ब्रज' कहलाता है। इसी क्षेत्र की बोली 'ब्रज' है। उत्तर प्रदेश की सीमा के साथ लगे हरियाणा (गुड़गाँवा जिला) और राजस्थान (अलवर–भरतपुर जिला) तथा मध्य प्रदेश (ग्वालियर जिला) के कुछ क्षेत्रों में भी 'ब्रज' का प्रचलन है।

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि जो 'ब्रज' कभी समूचे भारत में साहित्यिक (काव्य) भाषा के आसन पर प्रतिष्ठित रही, वही अब पुनः सिमट कर 'बोली' के स्तर पर आ गई है।

'ब्रज' के प्रयोग की शुरुआत तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में आगरा–मथुरा और ग्वालियर से हुई। पहले यह सामान्य जन की 'बोली' थी, धीरे–धीरे लोक–गायकों और भक्त–कवियों द्वारा इसका प्रचार–प्रसार व्यापक हुआ। विभिन्न विद्वानों द्वारा यह राजदरबारों में भी सम्मानित हुई। पंद्रहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक यह भारत के बहुत बड़े भू–भाग की काव्य–भाषा और कहीं–कहीं गद्य–भाषा भी बन गई। कहीं 'भाषा' या 'भाखा' के रूप में और कहीं 'ब्रजबुलि' के रूप में इसकी सरसता व्याप्त हुई। खुसरो, कबीर, नानक, नामदेव, दादू, विष्णुदास, सूर, तुलसी, रहीम, रसखान, आलम और गुरु तेगबहादुर और गोविंद सिंह– हर क्षेत्र तथा वर्ग के रचनाकारों ने इसे अपनी वाणी का माध्यम बनाया। इसीलिए अठारहवीं शताब्दी के एक आचार्य कवि ने कहा कि 'ब्रजभाषा' हेतु ब्रजवास ही न अनुमानौं' अर्थात् 'ब्रज' भाषा के लिए 'ब्रज' (क्षेत्र) का वासी होना ही आवश्यक नहीं। ब्रज के सम्बन्ध में यह बात सामान्य हो गई कि 'भाषा ब्रजभाषा रुचिर'।

उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा अन्य कारणों से उत्तर भारत की एक अन्य बोली 'खड़ी बोली' इतनी सबल हो गई कि 'ब्रज' धीरे–धीरे सिकुड़ने लगी। बीसवीं शताब्दी में तो सर्वत्र खड़ी बोली (वर्तमान मानक हिन्दी) का साम्राज्य स्थापित हो गया और आज 'ब्रज' पुनः एक 'बोली' या 'उपभाषा' के रूप ही मान्य है।

'ब्रज' अपनी कई भाषिक विशेषताओं के कारण, अन्य बोलियों की अपेक्षा एक अलग पहचान रखती है। इसकी सबसे प्रमुख प्रवृत्ति यह है कि प्रायः संज्ञाएँ और क्रियाएँ 'ओकारांत' हैं। उन्हीं के अनुसार 'विशेषण' और क्रिया–विशेषण भी प्रायः 'ओकारांत' हो जाते हैं। जैसे–

छोरा कित गयो हो।

कैसो भलो मानस थी।

इसी प्रकार, पहलो, दूसरो, कारो, ऐसो, इतनो, प्यारो आदि प्रयोग सामान्य हैं। एक ओर 'न' का उच्चारण 'ण' में करने की प्रवृत्ति है तो दूसरी ओर 'ल', 'ड' आदि का उच्चारण 'र' के रूप में होता है। जैसे– परबी (प्रवीन), बेनु (वेणु), पर् यो (पड़ा), उरझ्यो (उलझा), जर्यो (जला), जुरत (जुड़त)। आरम्भिक 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में उच्चरित होती है, परंतु 'उ' के रूप में। जैसे– वदन–बदन, विकार–बिकार, विषय– बिखै, दाब– दाउ।

'ब्रज' की ध्वनि–संरचना एवं रूप–संरचना का कुछ आभास निम्नलिखित उदारहणों से हो सकेगा–

मानक हिंदी (खड़ी बोली)	**ब्रज**
काला लड़का बोला।	कारौ छोरा बोल्यौ ।
लड़का जाएगा।	छोरा जाइगौ ।
लड़का गाँव में आया और बहू से	छोरा गाम् कूँ आयौ औरु

बोला कि मैं नौकरी पर जाऊँगा।	बऊ ते बोल्यौ कै मैं नौकरी कूँ जाऊगो।
इन गाँवों में लड़कियों के मायके हैं।	इन् गाँमन् मैं छोरिन् कै पीह्र ऐं।
तू पेड़ काटेगा।	तू बिरवा काटैगो।
वह पेड़ काटेगा।	बु (ऊ) बिरवा काटैगो।

11.3.2.1.4 बुन्देलखण्डी– बुन्देला राजपूतों की भूमि बुन्देलखण्ड कहलाती है। उत्तर प्रदेश के झाँसी और ललितपुर से लेकर दक्षिण में होशंगाबाद तक बुन्देलखण्डी बोली जाती है। ओरछा, पन्ना, दतिया, सागर, टीकमगढ़, नरसिंहपुर, सिवनी और छिन्दबाड़ा जिलों का बडा भाग बुन्देलखण्ड़ी–भाषी है।

बुन्देलखण्ड़ी ब्रजभाषा से बहुत मिलती–जुलती है। यह भी ओकार बहुला भाषा है। संज्ञा, विशेषण और क्रिया के आकारान्त रूप ओकारान्त हो जाते हैं। अवधी की तरह घोरो–घोरवा, लाठी–लठिया जैसे रूप भी मिलते हैं। अल्पप्राणत्व बुन्देलखण्डी की उल्लेखनीय विशेषता है। इसके कारण 'हूँ' को 'अऊँ' है को 'अई' बोला जाता है। था, थे, थी को हतो, हते, हती बोलते हैं। बुन्देलखण्ड़ को साहित्यिक भाषा नहीं माना जाता है। परन्तु वहाँ के विद्वान यह 'मानने को तैयार नहीं हैं। वे बिहारी को बुन्देलखण्डी का कवि मानते हैं। इसुरी (ईश्वरी) के 'फाग' और गंगाधर की श्रृंगारिक कविताएँ बुन्देलखण्डी की अमूल्य निधि हैं।

11.3.2.1.5 कन्नौजी– इसका केन्द्र फर्रूखाबाद माना जाता है। ब्रजभाषा के सिवान से लेकर पूरब में कानपुर तक कन्नाैजी बोली, बोली जाती है। ऊधर गंगा के उस पार हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत जिलों की बोली भी कन्नाैजी है। कन्नौजी का क्षेत्र ब्रज और अवधी के बीच पड़ता है। अतः इसकी कुछ विशेष्ताएँ ब्रज से मेल खाती हैं, तो कुछ अवधी से। कन्नौजी भी ब्रज की तरह ओकारबहुला बोली है,परन्तु इसका 'ओ' ब्रज की तरह अतिवृति नहीं है। ब्रज में जहाँ आयौ, गयौ जैसे उच्चारण मिलते हैं, वहाँ कन्नौजी में आयो, गयो जैसे। बल्कि 'य' श्रुति के अभाव के कारण 'गयो' का उच्चारण 'गओ' जैसा होता है। बल्कि 'य' श्रुति के अभाव के कारण 'गयो' का उच्चारण 'गओ' जैसा होता है। कन्नौजी में ऐ–औ पूरी तरह संयुक्त स्वर हो गये हैं और अइ, अउ बोले जाते हैं, जैसे– पइर (पैर), कउन (कौन)। अवधी की तरह 'व' का उच्चारण 'उ' जैसा होता है, जैसे 'साउन माँ' (सावन में)। परसर्गों में कर्म कारक में ब्रजभाषा 'को' भी है और अवधी का, का भी, जैसा हमको, हमका। सम्बन्ध में भी अवधी का 'कर' मिलता है। सर्वनामों में भी ऐसी विविधता है। 'ई' (यह) और 'ऊ' (वह) अवधी की तरह हैं, तो याको, वाको ब्रज से मिलते–जुलते हैं।

11.3.2.1.6 दक्खिनी – हैदराबाद, देवगिरि, गुलबर्गा में विकसित दक्खिनी हिन्दी प्रकृति और संरचना में पश्चिमी हिन्दी के बहुत निकट है। इसका पुराना नाम 'रेखता' है। यह मूलतः दिल्ली में प्रचलित खड़ी बोली का ही दक्षिणी रूपान्तर हैं जो चौदहवीं–पन्द्रहवीं शताब्दी में विभिन्न मुसलमानों द्वारा वहाँ पहुँचा तथा खड़ी बोली हिन्दी के अनुरूप विकसित होता रहा ।

(अनेक भाषा–वैज्ञानिक 'दक्खिनी हिन्दी' की गणना मानक हिन्दी की बोलियों में नहीं करते, किन्तु प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ. हरदेव बाहरी तथा डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया इसे पश्चिमी हिन्दी का ही एक उपरूप मानने के पक्षपाती हैं ।)

11.3.2.1.4 राजस्थानी

यह हरियाणा के कुछ दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्रों के अतिरिक्त समस्त राजस्थान में बोली जाती है। इसके अन्तर्गत चार बोलियाँ समाविष्ट है– (1) मेवाती, (2) मारवाड़ी, (3) मालवी, और (4) जयपुरी।

मेवाती – यह हरियाणा के मेवात (सोहना, फिरोजपुर झिरका, नूह आदि) क्षेत्र की बोली है।

मारवाड़ी का क्षेत्र जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर और बीकानेर के जिले हैं।

मालवी राजस्थान के मालव प्रदेश की बोली है जो मध्य प्रदेश के इंदौर जिले तक बोली जाती है।

जोधपुरी जयपुर, कोटा–बूँदी क्षेत्र में प्रयुक्त होती है ।

11.3.2.2 पहाड़ी

इसे भाषा–वैज्ञानिक दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है – उत्तर–पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी। उत्तर पश्चिमी पहाड़ी में हिमाचल, जम्मू आदि के क्षेत्रों की बोली आती है और मध्य पहाड़ी में प्रमुखतया कुमाऊँनी और गढ़बाली समावेश है जिसका क्षेत्र उत्तर प्रदेश के अलमोड़ा, रानीखेत, नैनीताल, गढ़वाल (देहरादून–मसूरी) आदि तक फैला है। पूर्वी पहाड़ी के अन्तर्गत 'गोरखाली' वोली का नाम उल्लेखनीय है।

11.3.2.3 पूर्वी हिन्दी

'पश्चिमी हिन्दी' के पश्चात् 'पूर्वी हिन्दी' का क्षेत्र सबसे विस्तृत है। इसकी तीन बोलियाँ हैं– (1) अवधी, (2) बघेली, (3) छत्तीसगढ़ी।

अवधी

इस बोली का नामकरण अवध (अयोध्या) के आधार पर हुआ है। इसका क्षेत्र लखनऊ, फैजाबाद, सीतापुर, रायबरेली, गोंडा, बाराबंकी, प्रतापगढ़ तक फैला हुआ है। भारत के स्वतंत्र होने (सन् 1947 ई०) से पहले इस पूरे क्षेत्र का नाम 'अवध' ही था ।

'अवधी' यद्यपि उत्तर प्रदेश के एक सीमित क्षेत्र की बोली है पर मध्ययुग में इसे एक प्रौढ़, समृद्ध साहित्यिक (काव्य–) भाषा होने का गौरव मिल चुका है।

मुगल शासन के दौरान अनेक सूफी–संत लखनऊ–अवध में बस गये थे। उन्होंने अपने प्रेम–मार्गी मत का जन–साधारण में प्रचार करने के लिए, वहाँ की लोक–बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। यह बोली

अवधी थी। धीरे–धीरे 'अवधी' सामान्य जनता के दायरे से बाहर निकल कर सूफी फकीरों और कवियों की वाणी का माध्यम बन गई। मध्ययुग के लोकनायक और हिन्दी के प्रसिद्ध भक्त–कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने अमर महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना 'अवधी' में की। शायद इसलिए कि उनके आराध्य श्रीराम उसी 'अवध' (अयोध्या) के थे। सूफियों की 'अवधी' जहाँ ठेठ जनबोली थी, वहीं तुलसीदास ने उसे अपने संस्कृत ज्ञान के पुट से एक परिमार्जित और परिष्कृत 'काव्य–भाषा' बना दिया। परन्तु उनके बाद, 'अवधी' अधिक समय तक काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित न रह पाई। इसका एक कारण यह था कि हिन्दी–काव्य के क्षेत्र में 'ब्रज' का वर्चस्व बढ़ गया। यहाँ तक कि स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी अंतिम रचना 'कवितावली' की रचना 'ब्रज' में की। दूसरा कारण यह था कि मुसलमानों का शासन–क्षेत्र दक्षिण तक फैल जाने से अधिकांश सूफी दरवेश भी उधर चले गये। उन्होंने वहाँ की 'दक्षिणी हिन्दी' को अपना लिया।

इस प्रकार, 'अवधी' यद्यपि साहित्यिक भाषा के पद पर अधिक समय आसीन न रह सकी, तथापि लोक–व्यवहार में उसका प्रचलन आज भी है।

'अवधी' की ध्वनि–संरचना और रूप–रचना मानक हिंदी (खड़ी बोली) से पर्याप्त भिन्न है। उदाहरणतया इसमें 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण 'अइ' तथा 'अउ' के रूप में होता है– ऐसा–अइसा, और अउर। व्यंजन ध्वनियाँ शब्द के अंत में प्रायः उकारांत उच्चरित होती हैं। जैसे– सतु, रामु, दिनु इत्यादि। कुछ पदों के अंत में 'इया' और 'वा' लगाने की प्रवृत्ति है। जैसे– छोकरिया, बेटवा, बचवा इत्यादि। 'ड़' का उच्चारण 'र' के रूप में (प्रायः संज्ञाओं में) होता है– लड़का–लरिका। 'व' प्रायः 'ब' बोला जाता है– बैसु (वयस), बदनु (बदन), बारी (वारी अर्थात् बलिहारी), विचार–बिचार, व्याख्या–बिआखा, विष (बिखु) इत्यादि। क्रिया–पदों से अंतिम 'ना' के स्थान पर 'इबो' बोला जाता है– करना–करिबो, चलना–चलिबो आदि।

'अवधी' की भाषिक प्रकृति का वैशिष्ट्य समझने के लिए कतिपय अन्य उदाहरण उपयुक्त होंगे–

मानक हिंदी खड़ी बोली	**अवधी**
मैं चला ।	मइँ चलेउँ।
तू चला।	तू चलिस।
हम चलते हैं।	हम चलन।
मैं उसकी पीठ खुजाता हूँ।	मइँ ओकर पीठ खजुआत हउँ।
वे कहाँ रहते हैं?	वे कहा रहत हुईं ?
मिट्टी का दीप जलता है।	माटी करे दीप जलइ।
मेरा सिर दुखता है।	मोर मूड़ पिरावत अहइ ।
लड़की आकर गिर गई।	लरिकी आइकै गिर गइस।

लड़कों ने गजब कर दिया।	लरिका गजब कर दिहिन ।
वे कार्तिक में बम्बई जाएँगे।	वे कातक म्हा बस्बई जइहइँ।
हम भी चलेंगे।	हमउँ चलइ।
बेटा भी चलेगा।	बेटवा उ चलि है।

बघेली अधिकतर मध्यप्रदेश के बघेलखंड क्षेत्र में बोली जाती है। इसका क्षेत्र छोटा नागपुर तथा रीवाँ जिला है।

छत्तीसगढ़ी भी मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ इलाके की बोली है। रायपुर और विलासपुर में इसका प्रयोग होता है।

11.3.2.4. बिहारी

बिहार के अधिकांश भागों में प्रयुक्त होने के कारण इसका नाम 'बिहारी' है। इसके अंतर्गत तीन बोलियों के नाम उल्लेखनीय हैं– (1) भोजपुरी, (2) मैथिली, (3) मगही।

भोजपुरी

भोजपुरी का नामकरण यद्यपि जिला शाहाबाद (बिहार) के एक गाँव 'भोजपुर' के आधार पर हुआ है, तथापि इसका क्षेत्र बिहारी बोलियों में सबसे अधिक है। इसके अंतर्गत गोरखपुर, देवरिया, बलिया, वाराणसी, जौनपुर और मिर्जापुर के जिले समाविष्ट हैं।

'भोजपुरी' के इतने अधिक विस्तार और प्रचार–प्रसार का कारण राजनीतिक रहा। प्राचीन समय में उपर्युक्त 'भोजपुर' गाँव, 'भोजपुर' राज्य की राजधानी रहा। राजकीय तंत्र के अंतर्गत वहाँ की बोली धीरे–धीरे आस–पास के क्षेत्रों में फैल गई। आज लगभग ढाई करोड़ व्यक्ति इसका प्रयोग करते हैं। इसका विस्तार नेपाल की सीमा तक पश्चिमी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा छोटा नागपुर तक है।

यद्यपि 'भोजपुरी' में लिखित साहित्य अधिक नहीं है (केवल राहुल सांकृत्यायन की कुछ रचना भोजपुरी में हैं, अन्य रचनाकारों ने या तो 'अवधी' में रचना की, या फिर खड़ी बोली में), तथापि इस क्षेत्र के अनेक गण्यमान्य व्यक्ति राजनीति, कला, सिनेमा तथा खेल–जगत् में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इसलिए यह बोली, अन्य बोलियों की अपेक्षा, उत्तर–पूर्व भारत में अधिक चर्चित तथा लोकप्रिय है। 'गंगा मैया तोर पियरी चढ़इबो' जैसी फिल्मों ने साहित्य–कला के क्षेत्र में अपार प्रशंसा प्राप्त की।

'भोजपुरी' में 'अल्पप्राण' ध्वनियों (क, च, ठ, त, प, ब आदि) को 'महाप्राण' (ख, छ, ठ, थ, फ, भ आदि) के रूप में उच्चरित करने की विशेष प्रवृत्ति है। जैसे– टाँग–ठाँङ्। पेड़–फेड़। पतंगा–फतिंगा। महाभारत–महाभारथ। कहीं–कहीं 'न' का उच्चारण 'ब' के रूप में होता है। भोजपुरी बोलने वाले 'नोट' को 'लोट', 'नोटिस' को 'लोटिस' आदि कहते हैं। इसी प्रकार 'ल' को 'र'–गला–गरा, मछली––मछरी, बाल–बार तथा 'श' को 'च' बोलने की प्रवृत्ति भी मिलती है––'शाबास'–'चाबास'।

'भोजपुरी' बोली की एक अन्य भाषिक प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इसमें संख्यावाची विशेषणों–एक, दो, चार आदि के साथ 'गो' या 'ठो' लगाने का प्रचलन है.। जैसे– एक ठो रुपिया, दूगो आदमी, चार ठो बइल। इसी प्रकार क्रियाओं के अंत में हलंत 'ल्' जोड़ने की प्रवृत्ति सामान्य है– चलत्, खायल्, गइल् आदि। स्थानवाची क्रिया–विशेषण 'यहाँ', 'वहाँ' के लिए 'इँहवाँ' 'उँहवाँ' आदि का और 'कहाँ' के लिए 'केठाँ' (कौन–सी जगह?) का प्रयोग होता है।

'भोजपुरी' की भाषिक प्रकृति और विशिष्ट प्रवृत्तियों को तनिक और स्पष्टता से जानने के लिए कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

मानक हिंदी (खड़ी बोली)	**भोजपुरी**
मैं घर में हूँ ।	मैं घरे हई ।
हम घर में हैं।	हमनीका घर हउएँ ।
वह घर में है।	ओ घरे हो ।
पानी बहता है।	पानी बहत ब।
ऐसी नारियाँ भारत में	अइसल मेहरारू भारत देस माँ भरल
भरी हुई हैं।	बाड़ी ।
तुम घर रहोगे।	तोहनीका घर रहबि ।
कौन वन रहे री कोयलिया,	कवना बने रहलु हे कोइलर,
कौन वन जाय।	कवना बने जाए।

मैथिली अधिकांशतः दरभंगा, पूर्णिया और भागलपुर में बोली जाती है।

मगही का क्षेत्र पटना, गया तथा हजारीबाग जिले के कुछ भाग में फैला हुआ है।

हिंदी और उसकी बोलियों में अंतर

हिंदी (खड़ी बोली––पश्चिमी हिन्दी) तथा उसकी अन्य बोलियों में अंतर स्पष्ट करने वाले कुछ तथ्य–संकेत इस प्रकार हैं–

(1) हिन्दी आकारांत–प्रधान है (आया, गया, रहा, कहा, घोड़ा, माथा आदि) जबकि उसकी अधिकांश बोलियाँ ओकारांत–प्रधान हैं (आयो, गयो, रह्यो, कह्यो, घोड़ो, माथो आदि)।

(2) हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले संधिस्वर (ए, ओ) कुछ बोलियों में पृथक् होकर मूल स्वर–युगल के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– दो–दुई, बैल–बइल, ऐसा–अइसा, कौन–कउन।

(3) अन्य कुछ बोलियों में यही स्वर स्वरसंधि के अनुसार परिवर्तित व्यंजनों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– कौन–कवन (कवण)।

(4) इसके विपरीत, कुछ बोलियों में हिन्दी अर्धस्वर (य, व) के. स्थान पर इनमें आभासित मूल स्वर इ–उ का प्रयोग देखा जाता है। यथा–यहाँ–इहाँ, वहाँ–उहाँ।

(5) हिन्दी की अधिकांश बोलियों में हिन्दी के 'न' के स्थान 'णँ' का उच्चारण प्रचलित है– पानी–पाणी, थाना–थाणा, इत्यादि ।

(6) द्वित्व व्यंजनों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी अधिकांश बोलियों में पायी जाती है। जैसे– तन्नै, मन्नै, गाड्डी, बाब्बू, भीत्तर ।

(7) कई बोलियों की ध्वनियों में महाप्राणत्व की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल है– म्हारो, थारो आदि।

(8) कुछ बोलियों में क्रियापदों के मध्यवर्तो व्यंजन को हलन्त रूप में बोलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है– मार्‌या खेल्या, रह्या, कर्‌या, भेज्या, बोल्या इत्यादि ।

(9) कहीं–कहीं परसर्ग में उच्चरित 'ओ' ध्वनि 'ओं' या 'ऊँ' के रूप में प्रयुक्त होती है। जैसे– को–कू (मेरे कू तेरे कू) से–सों–सूं (मो सूँ, तो सूँ) इत्यादि ।

(10) हिन्दी की 'ल' ध्वनि का उच्चारण उसकी अनेक बोलियों में 'ल़' (ल और ड़ की मध्यवर्ती ध्वनि) के रूप में सुना जाता है । यथा– काल़, माल़ा, नाल़ा इत्यादि ।

(11) 'श' के स्थान पर 'स' का उच्चारण हिन्दी की अनेक बोलियों की प्रमुख प्रवृत्ति है– शमशेर–समसेर, शोक–सोक आदि ।

(12) कुछ बोलियों में 'स' का उच्चारण 'छ' के रूप में भी होता है– सीता–छीता, सारा–छारा आदि।

इस प्रकार के, हिन्दी और उसकी बोलियों के अन्तर–सूचक अनेक अन्य उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं; फिर भी ये सभी बोली–रूप ऐतिहासिक परम्परा तथा भाषिक संरचना की दृष्टि से, हिन्दी के साथ गुँथे हुए हैं। इनमें पारस्परिक बोधगम्यता, व्याकरणिक नियमों की समानता तथा सबसे अधिक सामाजिक–सांस्कृतिक रिक्थ की सहभागिता इन्हें हिन्दी से अधिक दूर नहीं होने देती। विभिन्न बोलियों में रचित लोक–साहित्य हिन्दी की अमूल्य थाती है जिसकी नींव पर मानक हिन्दी का सर्जनात्मक साहित्य एक विशाल भवन के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

11.4 निष्कर्ष :

हिन्दी की इन बोलियों का संक्षिप्त परिचय ही दिया गया है। वस्तुतः साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी की तीन बोलियों ने इतनी प्रमुखता प्राप्त कर ली कि वे 'भाषा' की कोटि में आ गई। इन बोलियों के नाम हैं– ब्रज, अवधी और खड़ी बोली। मध्यकाल में जहाँ ब्रज और अवधी में काव्य–रचना हुई वहीं आधुनिक काल में खड़ी बोली को प्रमुखता मिल गई। साहित्यिक दृष्टि से यही तीन बोलियाँ हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ हैं और साहित्यिक हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती हैं।

11.5 कठिन शब्द :

संरचना

आभास

उपभाषा

उपशाखा

समृद्ध

प्रशासन

व्यवसाय–प्रौद्योगिकी

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :

प्रश्न 1 हिन्दी की बोलियों पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

प्रश्न 2 हिन्दी की बोलियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

प्रश्न 3 पश्चिमी हिन्दी का परिचय विस्तारपूर्वक दीजिए।

____

____

____

____

____

प्रश्न 4 पूर्वी हिन्दी का परिचय दीजिए।

____

____

____

____

____

11.7 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

1. उदयनारायण तिवारी, भाषाशास्त्र की रूपरेखा।
2. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान।
3. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा।
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास।
5. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की ध्वनि संरचना।
6. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की संरचना।
7. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी।
8. उदयनारायण तिवारी, हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास।

B.A. HINDI **UNIT-IV** **Lesson No. 12**

COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

अलंकार

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 अलंकार का अर्थ

12.4 अलंकारों का महत्व

12.5 अलंकारों का काव्य में स्थान

12.6 अलंकारों के भेद

12.6.1 शब्दालंकार

12.6.2 अर्थालंकार

12.6.3 उभयालंकार

12.7 निष्कर्ष

12.8 कठिन शब्द

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.10 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें

12.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

– काव्यालंकार के संबंध में जान सकेंगे,

– शब्दालंकारों को समझ सकेंगे,

– अर्थालंकारों को समझ सकेंगे, और

12.2 प्रस्तावना :

काव्य के सौन्दर्य और विशेषताओं को प्रकट करने के लिए अनेक मानदण्ड स्थापित किए गये हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों ने काव्य के सौन्दर्य को अपने–अपने ढंग से ढूंढा है। काव्य में अलंकार का प्रमुख स्थान है। गद्य हो अथवा पद्य सभी में साहित्यकारों ने अलंकार का प्रयोग किया है। काव्य में अलंकारों का प्रयोग, भिन्न–भिन्न स्थितियों में अलग–अलग किया जाता है। जिस प्रकार से किसी रमणी की शोभा अलंकार (आभूषण) के बिना अधूरी है, उसी प्रकार काव्य की शोभा को बढ़ाने के लिए भी अलंकार का प्रयोग अति आवश्यक है। जब हम किसी प्रभाव को स्पष्ट करते हैं तब अत्युक्ति, हेतु–कल्पना आदि अंलकारों के प्रयोग द्वारा हम बल प्रदान करते हैं। अलंकारों का प्रयोग हम संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि को चमत्कृत करने के लिए करते हैं। जब हम कथ्य में किसी की स्तुति अथवा निंदा या व्यंग्य द्वारा अपनी बात कहते हैं तो वहाँ अलंकार उसे अभिव्यक्त करने में सहायक होता है। काव्य के गुण, रस, वस्तु विन्यास, रचनाकार के मन्तव्य के अनुसार अलंकार की सीमा में समाविष्ट हो जाते हैं। भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिए एवं वस्तुओं के गुण, क्रिया का तीव्रता से अनुभव कराने में अलंकार ही सहायक होते हैं।

12.3 अलंकार का अर्थ

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है 'सुन्दरता का साधन' इनके द्वारा काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि हो जाती है। इसलिए साहित्यकारों ने, जिन साधनों से काव्य में सौन्दर्य वृद्धि होती है उन्हें 'अलंकार' नाम दिया है। अलंकार की परिभाषा देते हुए कहा गया है– 'अलंकरोति अति अलंकारः' अर्थात् जो अलंकृत (सुशोभित) करे, उसे अलंकार कहते हैं। आचार्य दण्डी के अनुसार– "काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते" अर्थात् काव्य के शोभा कारक धर्म अलंकार कहलाते हैं। अलंकार की परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है– "काव्य की शोभा बढ़ाने वाले तत्व अलंकार कहे जाते हैं।"

12.4 अलंकारों का महत्व –

अलंकार काव्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माने गए हैं। अलंकारों के अभाव में काव्य उसी तरह फीका–सा लगता है, जैसे कोई कामिनी बिना श्रृंगार के बिना आभूषणों के लगती है। जब कोई कवि सामान्य भाषा में अपने भाव व्यक्त कर पाता है तब वह अलंकारों की ही सहायता लेता है। भाव को स्पष्ट करने तथा दृश्य को प्रत्यक्ष कराने में अलंकारों की महती भूमिका रहती है। अलंकार केवल वाणी की सजावट नहीं हैं, अपितु वे भाव का बोध कराने में सहायक उपादान हैं। अलंकारवादी आचार्य अलंकारों को काव्य का प्राणतत्व अर्थात् काव्य की आत्मा तक मानते हैं। जिस प्रकार अलंकारों को धारण करने से नारी के साज सौन्दर्य में आकर्षण और निखार की वृद्धि होती है, उसी प्रकार अलंकार से कविता की सुन्दरता बढ़ जाती है। अलंकारों से कविता में चमत्कार आ जाता है। कवि केशव के शब्दों में–

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत।
भूषण बिनु न विराजई कविता, वनिता, मित।

अलंकार का लक्षण– शब्द और अर्थ में सौन्दर्य उत्पन्न करने वाली वर्णन–शैली 'अलंकार' कहलाती है।

12.5 अलंकारों का काव्य में स्थान–

अर्थ के सौन्दर्य के बिना वाक्य को काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है और अर्थ के सौन्दर्य के साधनों में से एक है अलंकार। इस कारण से अलंकारों का काव्य में विशिष्ट स्थान है इनके द्वारा उक्ति में चमत्कार तो आता ही है साथ ही भाव में स्पष्टता आ जाती है। उदाहरण देखिए–'मुख सुन्दर है। इतना कह देने मात्र से सुन्दरता का भाव स्पष्ट नहीं होता है पर जब इसी भाव को आलंकारिक शैली में इस प्रकार कहा जाए, 'मुख, चन्द्र के समान सुन्दर है' तो भाव स्पष्ट हो जाता है। अतः सुन्दरता का भाव चन्द्र के साथ तुलना करने से शीघ्र ही समझ में आ जाता है।

अलंकारों के द्वारा उक्ति में प्रभावोत्पादक शक्ति की भी वृद्धि हो जाती है ऐसा सभी मानकर चलते हैं। वे लोग अपने भावों को सुन्दर, स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने के लिए अपनी उक्ति को अलंकृत करते हैं। किसी दुर्जन की दुर्जनता को दर्शाने के लिए वे कहते हैं, 'वह तो काला नाग है।' इस कथन में अलंकारों का मूल तत्त्व विद्यमान है।

अलंकार साधन हैं साध्य नहीं। अतः इनके आकर्षण में फँसकर रचना के मूल भावों को विस्तृत नहीं करना चाहिए। इनका प्रयोग स्वभावतः ही होना चाहिए। इनके आधिक्य से रचना का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। वह पाठक अथवा श्रोता को बोझिल–सी लगने लगती है। अतः मूल भावों की रक्षा करते हुए ही अलंकारों का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार अलंकार कृतिकार की प्रतिभा में बाधक न बनकर सहायक सिद्ध होंगे! उदाहरण देखिए–

मेरी चितवन खींच गगन के कितने रंग लाई है
शतरंगों के इन्द्र–धनुष–सी स्मृति उर में छाई।

उपर्युक्त उदाहरण में गगन की ओर देखने में सम्भावना की गई है कि गगन के अनेक रंगों को कवयित्री की चितवन खींच लाई है, गगन के अनेक रंग हैं न। उस समय कितनी ही बातों का स्मरण हो आया है। स्मरण में कितनी बातें हैं। इसलिए उसकी विभिन्न रंग वाले इन्द्रधनुष से उपमा की गई है । इस उपमा के द्वारा स्मृति में आने वाले भावों की विविधता स्पष्ट और चमत्कृत हो गई है, इसका श्रेय अलंकार को ही जाता है। अतः अलंकारों का काव्य में विशिष्ट स्थान है, इनका होना काव्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

12.6 अलंकारों के भेद– अलंकार तीन प्रकार के होते हैं:

12.6.1 शब्दालंकार– शब्दालंकार शब्द पर आधारित होते हैं। यदि शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची रख दें, तो अलंकार समाप्त हो जाता है। प्रमुख शब्दालंकार हैं– अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्ति, वक्रोक्ति आदि।

अर्थालंकार– अर्थालंकार अर्थ पर आधारित होते हैं अतः शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची रख देने पर भी अलंकार बना रहता है। काव्य के सौन्दर्य में इनका विशेष योगदान रहता है क्योंकि ये उसके आन्तरिक सौन्दर्य को व्यक्त करने में सक्षम होते हैं। उदाहरण देखिये–

निकल रही थी मर्म वेदना करूणा–विकल कहानी–सी।

12.6.3 उभयांलकार – उभयांलकार शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित रहकर दोनों को चमत्कृत करते हैं।

मुख्य शब्दालंकार

1. अनुप्रास

जहाँ व्यंजन वर्णों की आवृत्ति होती है, उसे 'अनुप्रास अलंकार' कहते हैं। जैसे–

1. 'दमकैं दंतियाँ दुति दामिनि ज्यौं किलकें कलकल बालविनोद करै। –तुलसीदास

   यहाँ पर 'द', 'म', 'क', 'त', और 'ल' आदि व्यंजनों की आवृत्ति हुई है। अतः यह अनुप्रास अलंकार है।

   1. मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ। –सूरदास

      यहाँ पर 'म' व्यंजन वर्ण की आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

2. श्लेष

श्लेष का शब्दार्थ है–संयोग। इस शब्दालंकार में एक शब्द के साथ अनेक अर्थों का संयोग रहता है।

जैसे – 'चिरजीवो जोरी जुरे क्यों न स्नेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।

इसमें 'वृषभानुजा' शब्द का एक बार ही उच्चारण व श्रवण होता है। किन्तु अर्थबोध के समय 'वृषभ–अनुजा' और 'वृषभानु–जा' इन दो शब्दों का भान होता है। इस प्रकार जहाँ एक शब्द द्वारा एक से अधिक अर्थों की प्रतीति होती है, वहाँ शलेष अलंकार होता हैं। श्लेष अलंकार के निम्नलिखित दो भेद है–

(1) अभंग श्लेष (2) सभंग श्लेष

(1) अभंग श्लेष–जहाँ एक ही शब्द का भान होता है, वहाँ अभंग श्लेष होता है। इसमें शब्द को तोड़े बिना ही उसके अनेक अर्थ निकल आते हैं। जैसे–

1. तुम्हारी पी मुख वास तरंग, आज बौरे भौरे सहकार। –गुंजन (पंत)

यहाँ पर भौरे और सहकार दोनों का उल्लेख है, दोनों का उल्लेख पंतजी को अभिप्रेत है। अतः यहाँ 'बौरे' शब्द के दो अर्थ प्रतीत होते हैं – 'भौंरे बौरे' अर्थात् उन्मत्त हो गए और 'सहकार (आम) बौरे' अर्थात् उन पर बौर निकल आई। इस उदाहरण में 'बौरे' शब्द के दो अर्थ बिना शब्द को तोड़े ही निकल आए हैं, अतः यह अभंग श्लेष अलंकार है।

2. जो 'रहीम' गति दीप की, कुल कपूत की सोय।
   बारे उजियारी करै, बढ़े अँधेरों होय।। –रहीम

यहाँ पर दीप और कपूत–दोनों रहीम के वर्णन के विषय हैं। अतः 'बारे' बाल्यकाल और बाल देना तथा 'बढ़े' बड़ा हो जाना और बुझ जाना, ये दो–दो अर्थ शब्द के तोड़े बिना निकाले हैं। अतः अभंग श्लेष अलंकार है।

(ii) सभंग श्लेष– इसमें शब्द को तोड़कर अनेक अर्थों की प्रतीति होती है। जैसे –

बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही।
संतत सुरानीक हित जेही।। –तुलसीदास

यहाँ पर 'सुरानीक' शब्द के दो अर्थ निकलते हैं।

(i) सुर + अनीक = देवों की सेना।

(ii) सुरा+नीक = सुरा (शराब) अच्छी लगती है जिन्हें।

अतः 'सुरानीक' शब्द को तोड़ने से ये दो अर्थ निकले, यह सभंग श्लेष अलंकार है।

3. यमक

जहाँ एक शब्द की दो बार आवृत्ति हुई हो और दोनों स्थानों पर उसका अर्थ भिन्न हों वहाँ

यमक अलंकार होता है। जैसे–

1. मतवारे सब है रहे, मतवारें मन माहिं।
सिर उतारि सत धर्म पै, कोउ चढ़ावत नाहिं।। – वीर सनसई

यहाँ 'मतवारे' शब्द की आवृत्ति हुई है। दोनों जगह अर्थ भिन्न हैं। प्रथम 'मतवार का अर्थ मत वाले और दूसरे का अर्थ है मतवारे (पागल) अतः यहाँ यमक अलंकार है।

मुख्य अर्थालंकार

1. उपमा

जहाँ परस्पर भेद रहते हुए उपमेय का उपमान के साथ सादृश्य का वर्णन हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है। अर्थात् गुण, धर्म या क्रिया के आधार पर उपमेय की तुलना उपमान से की जाती है। जैसे – **हरिपद कोमल कमल से**। हरिपद (उपमेय) की तुलना कमल (उपमान) से कोमलता के कारण की गई है। अतः उपमा अलंकार है। इसमें चार बातें आवश्यक होती हैं–

1. उपमेय 2. उपमान 3. वाचक शब्द 4. साधारण धर्म।

1. **उपमेय–** जिसकी किसी अन्य उत्कृष्ट वस्तु से समानता की जाए, उसे उपमेय कहते हैं। जैसे– मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है। इस वाक्य में 'मुख' उपमेय है।

2. **उपमान–** उपमेय की जिस उत्कृष्ट गुण वाले पदार्थ के साथ समता की जाती है, उसे उपमान कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्द्रमा' उपमान है।

3. **वाचक शब्द–** जो शब्द समानता बताने वाले हैं; वे वाचक कहलाते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'समान' वाचक शब्द है।

4. **साधारण धर्म–**उपमेय और उपमान में जो धर्म समान रूप से मिलता है, उसे साधारण धर्म कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'सुन्दर' साधारण धर्म है।

उपमा अलंकार के दो भेद होते हैं:–

(i) **पूर्णोपमा**–जहाँ उपमा में उपमेय, उपमान, समान धर्म और वाचक शब्द ये चारों विद्यमान हों, वहाँ पूर्णोपमा अलंकार होता है। जैसे–

चूमता था भूमि तल को अर्ध विधु–सा भाल।
बिछ रहे थे प्रेम के दृग–जाल बन कर बाल।।
छत्र–सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ;
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।। – मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ पर 'भाल' और 'हाथ' उपमेय की 'विधु' और 'छत्र' उपमान के साथ समता की गई है। इसमें 'सा' वाचक शब्द है और 'चूमता' व 'उठा था' साधारण धर्म है। अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है। –

(ii) **लुप्तोपमा–** जहाँ उपमा के चारों अंगों (उपमेय, उपमान, वाचक शब्द, साधारण धर्म) में से किसी भी एक का उल्लेख न किया गया हो अर्थात् कोई भी अंग लुप्त हो तो वहाँ लुप्तोपमा अलंकार होता है। जैसे–

1. मुख चन्द्रमा के समान है।

   यहाँ 'मुख' उपमेय है, 'चन्द्रमा' उपमान, 'समान' वाचक शब्द है; परन्तु साधारण धर्म लुप्त है। अतः यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है।

2. कोटि–कुलिस–सम वचन तुम्हारा।– रामचरित् मानस

   यहाँ वचन उपमेय है, 'कुलिस' उपमान है, और 'सम' वाचक शब्द है, परन्तु साधारण धर्म लुप्त है। अतः यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है।

2. **रूपक**

जहाँ सादृश्य की अधिकता के कारण उपमेय में उपमान आरोपित किया जाए, वहाँ रूपक अलंकार होता है। जैसे – मुख चन्द्रमा है।

यहाँ सादृश्य की अधिकता के कारण 'मुख' उपमेय में 'चन्द्रमा' उपमान आरोपित किया गया है। अतः रूपक अलंकार है।

रूपक के तीन भेद हैं–

(1) सांग रूपक (2) निरंग रूपक (3) परम्परित रूपक

(i) सांग रूपक– जहाँ एक प्रधान उपमेय में उपमान का अंगों सहित आरोप हो, वहाँ सांग रूपक कहलाता है। जैसे–

बीती विभावरी, जाग री

अन्बर–पनघट में डुबो रही,

तारा–घट ऊषा नागरी। –जयशंकर प्रसाद

यहाँ अम्बर में पनघट, तारे में घड़े और ऊषा में नागरी (सुन्दरी) का आरोप किया गया है। ये आरोप आपस में सम्बन्ध रखते है; क्योंकि प्रातःकाल का वर्णन है, इसमें आकाश, तारे और उषा का वर्णन अवश्य होगा। अतः यह सांग रूपक है।

(ii) निरंग रूपक– जहाँ उपमेय में अन्य अंगों के बिना उपमान का आरोप हो, वहाँ निरंग रूपक अलंकार होता है। जैसे–.

1. कठिन जेठ सी दोपहरी में तप्त धूलि में सन,
कृषक–तपस्वी तप करते हैं तप से स्वेदित मन। –कादम्बिनी

यहाँ 'कृषक' उपमेय और 'तपस्वी' उपमान–दोनों को ग्रहण किया गया है। 'कृषक' का ज्ञान भी यहाँ होता है और उसमें 'तपस्वी' के अभेद का भी निश्चय है। अतः यहाँ निरंग रूपक अलंकार है।

2. प्रेम–सलिल से द्वेष का सारा मल धो जाएगा।

यहाँ प्रेम सलिल (जल) का अंगों के बिना आरोप किया गया है। अतः यह निरंग रूपक अलंकार है।

(ii) परम्परित रूपक– जहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का हेतु हो, वहाँ परम्परित रूपक अलंकार होता है। जैसे–

हृदय–नभ–तारा बन छवि धाम।
प्रिये, अब सार्थक करो स्वनाम। –गुँजन (पंत)

यहाँ 'प्रेयसी' उपमेय में 'तारा' का आरोप किया गया है। किन्तु तारा तो आकाश में ही होता है। अतः हृदय में नभ का आरोप किया गया हैं। इसके बिना प्रेयसी में तारा का आरोप सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए हृदय में आकाश का आरोप प्रेयसी में तारा का आरोप निभित्त होने से यहाँ परम्परित रूपक अलंकार है।

अंगद तुही वालि–कर बालक।
उपजेउ वंश–अनल कुल चालक।। – तुलसीदास

यहाँ बाली के वंश में बॉस का आरोप अंगद में अग्नि के आरोप का कारण है। अतः यह परम्परित रूपक अलंकार है।

उत्प्रेक्षा

यहाँ प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत वस्तु की सम्भावना का वर्णन हो अर्थात् उपमेय में उपमान की कल्पना या सम्भावना होने पर उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे

कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गए।
हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गए पंकज गए।।

यहाँ अश्रुओं से युक्त उत्तरा के नयन (उपमेय) में ओसकण युक्त पंकज (उपमान) की सम्भावना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

जैसे– मुख जनु शुभ्र मयंक

यहां मुख (उपमेय) को शुभ्र मयंक (उपमान) मान लिया गया है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस अलंकार की पहचान मनु, मानो, जनु, जानो शब्दों से होती है।

4. **अतिशयोक्ति**

जहाँ किसी वस्तु का वर्णन बढ़ा–चढ़ाकर किया जाए। जब काव्य में कोई बात बहुत बढ़ा–चढ़ाकर कही जाती है तो वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

जैसे– लहरें व्योम चूमती उठतीं।

यहां लहरों को आकाश चूमता हुआ दिखाकर अतिशयोक्ति का विधान किया गया है।

अतिशयोक्ति अलंकार के निम्नलिखित छह भेद हैं–

(1) **रूपकातिशयोक्ति–** जहाँ उपमान के द्वारा उपमेय के निगल जाने का वर्णन हो, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे –

घूम रहा है कैसा चक्र!
यह नवीनतम कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र। –यशोधरा (गुप्त)

यहाँ गौतम सोच रहे हैं कि नवनीत (आत्मा) कहाँ चला जाता है, जिसके कारण यह तर्क (छाछ) देह रह जाता है । जिस तरह दूध अथवा दही में सारभूत पदार्थ मक्खन ही है, उसके निकल जाने पर वे निस्सार

रह जाते हैं, उसी तरह जीवात्मा ही सार–भूत पदार्थ है, उसके निकल जाने पर यह निस्सार देह रह जाती है।

यहाँ उपमेय आत्मा और उपमान नवनीत तथा दूसरे वाक्य में उपमेय– देह और उपमान– तक है। दोनों स्थलों में उपमान के द्वारा उपमेय के निगल जाने का वर्णन है। अतः रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(ii) **भेदकातिशयोक्ति**– यहाँ भेद न होने पर उपमेय में अलौकिकता बताने हेतु 'अन्य' 'और' आदि शब्दों से भेद बताया जाता है, वहाँ भेदकातिशयोवित अलंकार होता है। जैसे–

न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की। – भूषण

यद्यपि शिवाजी की रीति वही है जो लोक में होती है, परन्तु उसमें अलौकिकता हेतु उसे 'न्यारी' शब्द के द्वारा भिन्न बताया गया है। अत' भेदकातिशयोक्ति अलंकार है।

(iii) सम्बन्धातिशयोक्ति – जहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध और सम्बन्ध में असम्बन्ध का उल्लेख हो, वहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

अति सुन्दर लखि मुख सिय! तैरो।
आदर करत न हम ससि–केरो। – रामचरितमानस

यहाँ यद्यपि चन्द्रमा के साथ आदर का सम्बन्ध है तथापि आदर के असम्बन्ध का उल्लेख किया गया है। अतः यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

(iv) अक्रमातिशयोक्ति – यहाँ कारण और कार्य एक साथ बिना व्यवधान के हो जाए, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

वह शर इधर गांडीव–गुण से भिन्न जैसे ही हुआ।
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ। . –जयद्रथ वध

यहाँ 'बाण का लगना' कारण और 'सिर का धड़ से अलग होना' कार्य के एक साथ होने का उल्लेख होने से अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है।

(v) चलातिशयोक्ति– जहाँ कारण को सुनने अथवा देखने आदि से ही कार्य हो जाए वहाँ चंपलातिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे –

कैकेई के कहत ही रामगमन की बात।
नृप दशरथ के ताहि छिन, सूख गए सब गात।।–काव्य कल्पद्रुम

यहाँ 'श्रीराम के वन गमन' की बात के कहने मात्र से दशरथ की देह का सूखना कार्य हो गया। अतः

चपलातिशयोक्ति अलंकार है। कारण तो 'वन गमन' है, वह अभी हुआ ही नहीं, उसकी केवल चर्चा मात्र हुई है।

(vi) अत्यन्तातिशयोक्ति – जहाँ कारण से पहले ही कार्य हो जाए, वहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे–

और बरसने के पहले ही उड़ जाते हैं पानी के घंन,
हृदय–समर्पण के पहले ही आँसू हो गिर जाता है मन।
यहाँ पंख उगने से पहले ही पक्षी किसी ओर उड़ जाते,
यहाँ धधकने के पहले ही अंगारे हैं पड़ जाते ।। . –मानसी

यहाँ 'बरसना' कारण के पूर्व ही 'मेघों का उड़ जाना' कार्य हो जाने का उल्लेख है। इसी तरह 'हदय–समर्पण' कारण के पूर्व ही 'आँसू हो हृदय का गिर जाना' रूप कार्य का और 'पंख उगना' कारण के पूर्व पक्षी का उड़ जाना' कार्य का उल्लोख होने से अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है।

12.7 निष्कर्ष :

अलंकार का प्रयोग सौन्दर्य बढ़ाने के लिए होता है। यह सौन्दर्य भावों के स्तर पर भी हो सकता है और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी। अलंकार के द्वारा काव्य को रमणीयता दी जाती है और अभिव्यक्ति को प्रभावशाली भी बनाया जाता है अर्थात अलंकार भाव–भाषा के भूषण हैं और भाषा में घुलकर उसे अधिक सजीव, प्रभविष्णु एवं झंकृत करने में सहायक होते हैं। अलंकार रस भाव में सहायक होते हैं। अतः इसका मानव के मनोविज्ञाान से भी गहरा सम्बन्ध है। कविता को सुशोभित करने में अलंकारों का विशेष महत्व होता है।

12.8 कठिन शब्दः

सरसिज

गांडीव–गुण

अलौकिकता

सारभूत

निरंग

द्वेष

लुप्त

उत्कृष्ट

सम्भावना

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्नः

प्रश्न 1. अलंकार का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

____

____

____

____

____

प्रश्न 2. अलंकार की परिभाषा स्पष्ट करते हुए अलंकारों के प्रकार पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

प्रश्न 3. काव्य के सन्दर्भ में अलंकारों का महत्व बताइए।

____

____

____

____

____

12.10 सन्दर्भग्रन्थ / पुस्तकें :

1. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय, रस–छंद–अंलकार।
2. डॉ. बैंकट शर्मा, रस, अंलकार छनद–तथा काव्यांग।
3. डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी, काव्यांग परिचय।
4. कामताप्रसाद गुरू, हिन्दी व्याकरण।

लिपियों का उद्भव और विकास

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

– लिपियों की उत्पत्ति के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– लिपियों के विकास को समझ सकेंगे।

13.2 प्रस्तावना

13.3 लिपि की उत्पत्ति

13.4 लिपि का विकास

13.4.1 चित्रलिपि

13.4.2 सूत्रलिपि

13.4.3 प्रतीकात्मक लिपि

13.4.4 भावमूलक लिपि

13.4.5 भाव–ध्वनिमूलक लिपि

13.4.6 ध्वनिमूलक लिपि

13.4.6.1 आक्षरिक लिपि

13.4.6.2 वर्णिक लिपि

13.5 भारत में लिपि का विकास

13.5.1 भारत की प्राचीन लिपियाँ

13.5.1.1 सिन्धु घाटी की लिपि

13.5.1.2 खरोष्ठी लिपि

13.5.1.3 ब्राह्मी लिपि

13.5.1.3.1 ब्राह्मी लिपि का विकास
13.5.1.3.1.1 उत्तरी धारा
13.5.1.3.1.2 दक्षिणी धारा
13.5.1.3.1.3 देवनागरी लिपि
13.6 उपसंहार
13.7 कठिन शब्द
13.8 अभ्यास प्रश्न
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.2 प्रस्तावना –

विद्यार्थियो! मनुष्य ने लिखना कैसे सीखा, इसकी कहानी अत्यन्त मनोरंजक है। वस्तुतः लिखने की कला का आविष्कार मनुष्य की प्रमुख खोजों में से है। विद्वानों का विचार है कि इस कला की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति के बहुत बाद हुई। सदियों तक मनुष्य भाषा के द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता रहा, किन्तु उसके संरक्षण का उसके पास कोई साधन न था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि अनेक जातियाँ अपनी भाषाओं के साथ विश्व के रंगमंच पर आईं और विलीन हो गईं। आज हम इनका नाम तक नहीं जानते हैं। जब भाषा को लिखने की कला का माध्यम प्राप्त हुआ तब एक नवीन–सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। तब से मनुष्य अपने ज्ञान–विज्ञान के संचय और संरक्षण में प्रवृत्त हुआ जिससे सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ। वास्तव में भाषा और लिखने की कला, ये दो, ऐसी वस्तुएँ हैं जो मनुष्य को पशु से पृथक करती हैं और जिनके सहारे वह निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है।

लिपि की उत्पत्ति – भाषा की उत्पत्ति की भाँति लिपि की उत्पत्ति विवादास्पद है। भाषा के जन्म के बारे में जैसे प्राचीन मान्यता यह है कि भाषा को ईश्वर ने बनाया था, उसी तरह अधिकांश धार्मिक व्यक्ति यह भी मानते हैं कि लिपि को ईश्वर या किसी देवता ने बनाया है। ब्राह्मी लिपि नामकरण इसी आधार पर पड़ा है। पर तथ्य यह है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार लिपि को स्वयं जन्म दिया। जब–जब व्यक्त भावों, विचारों आदि को सुरक्षित रखने की आवश्यकता मनुष्य को पड़ी, वह प्रयत्न कर लिपि का विकास करता रहा। लिपि के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले विद्वानों का अनुमान है कि भाषा की भांति ही लिखने की कला की उत्पत्ति भी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही हुई होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि घटनाओं अथवा तथ्यों के संरक्षण की अपेक्षा अपने निकट की वस्तुओं से सहानुभूति प्रकट करने के लिए ही गुहा–मानव ने सर्वप्रथम चित्रों का अङ्कन किया था। उत्तर–पाषाण–काल के ऐसे अनेक–चित्र विभिन्न देशों की कन्दराओं की भित्तियों (दीवार) पर मिले हैं।

लिपि के विकास के संबंध में एक मान्यता यह है कि लिपि भाषा से पहले विकसित हुई। इस मान्यता के अनुसार प्रारम्भ में मनुष्य भाषा के अभाव में अपने विचारों की अभिव्यक्ति अपने हाथों पैरों के द्वारा करता था। धीरे–धीरे इन्हीं संकेतों के चित्रण से लिपि का जन्म हुआ। इस तरह प्रारंभ में लिपि भावाभिव्यक्ति का साधन थी, भाषाभिव्यक्ति का

नहीं। ज्यों–ज्यों लिपि विकसित होती गयी, उसका भावों से सीधा संपर्क छूटता गया एवं भाषा से सम्बंध जुड़ता गया। आज पूर्ण विकसित लिपि का भावों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया है, उसका संपर्क केवल भाषा से रह गया है। इसके विपरीत मतवालों की मान्यता है कि लिपि का जन्म भाषाओं के पश्चात् हुआ है।। इस मत की पुष्टि इस बात से होती है कि मानव समाज की ऐसी किसी अवस्था का पता नहीं चलता जिस अवस्था में मनुष्य भाषा का प्रयोग न करता हो। समय की जिस सीमा तक मनुष्य के सामाजिक जीवन की कल्पना की जा सकती है, उस सीमा रेखा तक भाषा के अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है। लिपि का जन्म भाषा के पश्चात् हुआ। इस तथ्य का प्रमाण यह भी है कि आज संसार में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जो भाषा का प्रयोग तो करती हैं पर लिपि का नहीं। अतः लिपि भाषा की परवर्ती एवं अनुगामी है। इन दोनों मतों को निम्नलिखित रूप में दर्शाया जा सकता है :

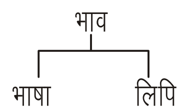

13.4 लिपि का विकास –

आज तक लिपि के सम्बन्ध में जो प्राचीनतम सामग्री उपलब्ध है, उस आधार पर कहा जा सकता है कि 4000 ई. पू. के मध्य तक लेखन की किसी भी व्यवस्थित पद्धति का कहीं भी विकास नहीं हुआ था और इस प्रकार के प्राचीनतम अव्यवस्थित प्रयास 10000 ई. पू. और 4000 ई. पू. के बीच लगभग 6000 वर्षों में धीरे–धीरे लिपि का प्रारम्भिक विकास होता रहा।

लिपि के विकास–क्रम में हमें निम्न प्रकार की लिपियाँ मिलती हैं –

13.4.1 चित्रलिपि	13.4.2 सूत्रलिपि	13.4.3 प्रतीकात्मक लिपि
13.4.4 भावमूलक लिपि	13.4.5 भाव–ध्वनिमूलक लिपि	13.4.6 ध्वनिमूलक लिपि

13.4.1 चित्रलिपि – चित्रलिपि ही लेखन के इतिहास की पहली सीढ़ी है। पर, वे प्रारम्भिक चित्र केवल लेखन के इतिहास के आरम्भिक प्रतिनिधि थे, यह सोचना गलत होगा। उन्हीं चित्रों से चित्रकला के इतिहास का भी आरम्भ होता है और लेखन के इतिहास का भी। उस काल के मानव ने कंदराओं की दीवारों पर या अन्य चीजों पर वनस्पति, मानव–शरीर या अंग आदि के टेढ़े–मेढ़े चित्र बनाए होंगे। यह भी सम्भव है कि कि कुछ चित्र धार्मिक कर्मकांडों के हेतु देवी–देवताओं के बनाये जाते रहे हों। इस प्रकार के पुराने चित्र दक्षिणी फ्रांस, स्पेन, क्रीट, मेसोपोटामिया, यूनान, इटली, पुर्तगाल, साइबेरिया, उज़बेकिस्तान, सीरिया, मिस्र, ग्रेटब्रिटेन, केलिफोर्निया, ब्राजील तथा ऑस्ट्रेलिया आदि अनेकानेक देशों में मिले हैं। ये पत्थर, हड्डी, काठ, सींग, हाथीदांत, पेड़ की छाल, जानवरों की खाल तथा मिट्टी के बर्तन आदि पर बनाये जाते थे।

चित्रलिपि में किसी विशिष्ट वस्तु के लिए उसका चित्र बना दिया जाता था। जैसे सूर्य के लिए गोला और उसके चारों ओर निकलती रेखाएँ, विभिन्न पशुओं के लिए उनके चित्र, आदमी के लिए आदमी का चित्र तथा उनके विभिन्न अंगो के लिए उन अंगों के चित्र आदि। चित्रलिपि की परम्परा प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में चली

आ रही है। भौगोलिक नक्शों में मन्दिर, मस्जिद, बाग, पहाड़ आदि तथा पंचांगों में ग्रह आदि चित्रों द्वारा प्रकट किये जाते हैं।

13.4.2 सूत्रलिपि – सूत्रलिपि का इतिहास भी बहुत पुराना है। इसकी परम्परा प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में चली आ रही है। स्मरण के लिए आज भी लोग रूमाल आदि में गाँठ देते हैं। सालगिरह या वर्षगांठ में भी वही परम्परा अक्षुण्ण है। प्राचीन काल में सूत्र, रस्सी तथा पेड़ों की छाल आदि में गाँठ दी जाती थी। किसी बात को सूत्र में रखने या सूत्र याद कर पूरी बात को याद रखने की परम्परा का भी सम्बन्ध इसी से ज्ञात होता है।

सूत्रों में गाँठ आदि देकर भाव व्यक्त करने की परम्परा भी काफी प्राचीन है। इस आधार पर भाव कई प्रकार से व्यक्त किये जाते रहे हैं जिनमें प्रधान ये हैं – (क) रस्सी में रंग–बिरंगे सूत्र बाँध कर (ख) रस्सी को रंग–बिरंगे रंगों से रँग कर (ग) रस्सी या जानवरों की खाल आदि में भिन्न–भिन्न रंगों के मोती, घोंघे, मूँगे या मनके आदि बाँध कर (घ) विभिन्न लम्बाइयों की रस्सियों से (ङ) विभिन्न मोटाइयों की रस्सियों से (च) रस्सी में तरह–तरह की तथा विभिन्न दूरियों पर गाँठें बाँध कर (छ) डंडे में भिन्न–भिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न मोटाइयों या रंगों की रस्सी बाँध कर। चीन तथा तिब्बत में प्राचीन काल में भी सूत्रलिपि का व्यवहार होता था। बंगाल के संथालों तथा कुछ जापानी द्वीपों आदि में अब भी सूत्रलिपि कुछ रूपों में प्रयोग में आती रही हैं। टंगानिका के मकोन्दे लोग छाल की रस्सियों में गाँठ देकर बहुत दिनों से घटनाओं तथा समय की गणना करते आये हैं।

13.4.3 प्रतीकात्मक लिपि – शुद्ध अर्थ में लिपि न होते हुए भी, इस रूप में कि आँख के सहारे दूरस्थ व्यक्ति के विचार भी उनके द्वारा भेजी गई वस्तुओं के द्वारा जाने जा सकते हैं, यह पद्धति लिपि कही जा सकती है। कई देशों और कबीलों में प्राचीन काल से इसका प्रचार मिलता है। तिब्बती–चीनी सीमा पर मुर्गी के बच्चे का कलेजा, उसकी चर्बी के तीन टुकड़े तथा एक मिर्च लाल कागज में लपेट कर भेजने का अर्थ रहा है कि युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। गार्ड का लाल या हरी झंडी दिखलाना, युद्ध में सफेद झंडा फहराना तथा स्काउटों का हाथ से बातचीत करना भी इसी के अन्तर्गत आ सकता है। गूँगे–बहरों के वार्त्तालाप का आधार भी कुछ इसी प्रकार का साधन है।

फतेहपुर जिले मे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि उच्च्य जातियों में लड़की के विवाह का निमन्त्रण हल्दी भेजकर तथा लड़के के विवाह का निमन्त्रण सुपारी भेजकर दिया जाता है। भोजपुर प्रदेश में अहीर आदि जातियों में हल्दी बाँट कर निमन्त्रण देते हैं। इलाहाबाद के आसपास छोटी जाति के लोगों में गुड़ बाँट कर निमन्त्रण देते हैं। कुछ स्थानों पर किसी के मृत्यु–संस्कार में भाग लेने के लिए आने वाला निमन्त्रण–पत्र कोने पर फाड़कर भेजा जाता है। इस प्रकार विचाराभिव्यक्ति के साधन विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न प्रकार के मिलते हैं। कांगो नदी की घाटी में कोई हरकारा जब कोई बहुत महत्वपूर्ण समाचार लेकर किसी के पास जाता था तो भेजने वाला उसे एक केले की पत्ती दे देता था। यह पत्ती 6 इंच लम्बी होती थी और दोनों ओर पत्ती के चार–चार भाग किये रहते थे। कम महत्त्व के समाचार के साथ चाकू या भाले आदि भेजे जाते थे। सामान्य समाचारों के साथ कुछ भी नहीं भेजा जाता था। लिपि के अन्य रूपों की भाँति यह बहुत व्यापक नहीं है और इसका प्रयोग बहुत ही सीमित है।

13.4.4 भावमूलक लिपि – भावमूलक लिपि चित्रलिपि का ही विकसित रूप है। चित्रलिपि में चित्र वस्तुओं को व्यक्त करते थे, पर भावलिपि में स्थूल वस्तुओं के अतिरिक्त भावों को भी व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ चित्रलिपि में

सूर्य के लिए एक गोला बनाते थे, पर भावमूलक लिपि में यह गोला सूर्य के अतिरिक्त सूर्य से संबद्ध अन्य भावों को भी भाव व्यक्त करने लगा, जैसे सूर्य देवता, गर्मी, दिन तथा प्रकाश आदि। भावमूलक लिपि के उदाहरण उत्तरी अमरीका, चीन तथा पश्चिमी अफ्रीका में मिलते हैं। इस लिपि के द्वारा बड़े–बड़े पत्र आदि भी भेजे जाते हैं। इस प्रकार वह बहुत ही समुनन्त रही। भाव लिपि, चित्रलिपि तथा सूत्रलिपि की अपेक्षा अधिक समुन्नत तथा अभिव्यक्ति में सफल हैं।

13.4.5 भाव–ध्वनिमूलक लिपि –चित्रलिपि का विकसित रूप ध्वनिमूलक लिपि है जिस पर आगे विचार किया जायेगा, पर उसके पूर्व ऐसी लिपि के सम्बन्ध में कुछ जान लेना आवश्यक है जो कुछ बातों में तो भावमूलक है और कुछ बातों में ध्वनि–मूलक। मेसोपोटैमियन, मिस्री तथा हित्ती आदि लिपियों को प्रायः लोग भावमूलक कहते हैं, पर यथार्थतः ये भाव–ध्वनिमूलक हैं, अर्थात् कुछ बातों में भावमूलक हैं और कुछ बातों में ध्वनिमूलक। आधुनिक चीनी लिपि भी कुछ अंशों में इसी के अंतर्गत आती है। इन लिपियों के कुछ चिह्न चित्रात्मक तथा भावमूलक होते हैं और कुछ ध्वनिमूलक और दोनो ही का इसमें यथासमय उपयोग होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार सिंधु घाटी की लिपि भी इसी श्रेणी की है।

13.4.6 ध्वनिमूलक लिपि – चित्रलिपि तथा भावमूलक लिपि में चिह्न किसी वस्तु या भाव को प्रकट करते हैं। उनसे उसके वस्तु या भाव नाम से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। पर इसके विरुद्ध ध्वनिमूलक लिपि में चिह्न किसी वस्तु या भाव को न प्रकट कर, ध्वनि को प्रकट करते हैं और उनके आधार पर किसी वस्तु या भाव का नाम लिखा जा सकता है। नागरी, अरबी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं की लिपियाँ ध्वनिमूलक ही हैं।

ध्वनिमूलक लिपि के दो भेद हैं – आक्षरिक (syllablic), वर्णिक (alphabetic)।

13.4.6.1 आक्षरिक लिपि (Syllablic) – आक्षरिक लिपि में चिह्न किसी अक्षर (syllable) को व्यक्त करता है, वर्ण (alphabet) को नहीं। उदाहरणार्थ, नागरी लिपि आक्षरिक है। इसके 'क' चिह्न में क्+अ (दो वर्ण) मिले हैं, पर इसके विरुद्ध रोमन लिपि वर्णिक है। उसके K में 'क्' है। अक्षरात्मक लिपि सामान्यतया प्रयोग की दृष्टि से तो ठीक है, किन्तु भाषाविज्ञान में जब हम ध्वनियों का विश्लेषण करते चलते हैं तो इसकी कमी स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ हिन्दी का 'कक्ष' शब्द लें। नागरी लिपि में इसे लिखने पर स्पष्ट पता नहीं चलता कि इसमें कौन–कौन वर्ण हैं, पर रोमन लिपि में यह बात (kaks'a) बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। नागरी में इसे देखने पर लगता है कि इसमें दो ध्वनियाँ हैं, पर रोमन में लिखने पर सामान्य पढ़ा–लिखा भी कह देगा कि इसमें पाँच ध्वनियां हैं। अरबी, फारसी, बँगला, गुजराती, उड़िया तथा तेलगू आदि लिपियाँ अक्षरात्मक ही हैं।

13.4.6.2 वर्णिक लिपि (alphabetic) – लिपि–विकास की प्रथम सीढ़ी चित्रलिपि है तो इसकी अंतिम सीढ़ी वर्णिक लिपि है। वर्णिक लिपि में ध्वनि की प्रत्येक इकाई के लिए अलग चिह्न होते हैं और उनके आधार पर सरलता से किसी भी भाषा का कोई भी शब्द लिखा जा सकता है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह आदर्श लिपि है। रोमन लिपि प्रायः इसी प्रकार की है। ऊपर नागरी और रोमन में 'कक्ष' लिखकर आक्षरिक लिपि और वर्णिक लिपि के भेद को तथा आक्षरिक की तुलना में वर्णिक लिपि की अच्छाई को हम लोग देख चुके हैं।

13.5 भारत में लिपि का विकास –

भारत में लिपि का विकास कब और कैसे हुआ, आज तक विवाद का प्रश्न बना हुआ है। पश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि भारत में लिपि का विकास सम्राट अशोक के एकाध शताब्दी पूर्व हुआ था। बर्नेल का कहना है कि भारत ने ईसा से चौथी या पाँचवी शताब्दी पूर्व फिनिक जाति के लोगों से लेखन कला सीखी थी। डॉ. बूलर की मान्यता है कि पाँच सौ ईसा पूर्व भारतवासियों ने सामी लिपि के आधार पर ब्राह्मी लिपि का निर्माण किया था। यह कथन आम प्रचलित पाया जाता है कि ह्वेनसांग (630–644 ई. पू.) भारत से लगभग 650 पुस्तकें बीस घोड़ों पर लादकर ले गया था। प्रश्न उठता है कि क्या इतनी पुस्तकें इस समय थीं जो एक ही युग में लिखी गयी थीं। मेंगस्थनीज (400 ई. पूर्व) का मत है कि भारत में लोग जन्म पत्रियाँ बनाते थे और प्रस्तर–फलकों पर खोद कर लिखा करते थे। इस सबके बावजूद भी मैक्समूलर साफ–साफ इन्कार कर जाते हैं कि ईसवी सन् से पूर्व भारत में किसी लिपि का विकास हुआ था। सिकन्दर के नौसेनापति निआर्कस ने लिखा है कि भारतवासी रुई के कपड़े या कागज पर अक्षर अंकित किया करते थे। इधर कुछ नवीन तथ्यों से पता चलता है कि भारत की लिपि बहुत कुछ अंशों में प्राचीन है। कपिलवस्तु के समीप पिपरावा कोट, जिला अजमेर में बरली और जरासन्ध की राजधानी गिरिब्रज नामक स्थानों पर प्राप्त शिलालेख भारतीय लिपि की प्राचीनता के प्रमाण हैं। ये लेख ईसा से 500–600 वर्ष पूर्व के हैं। दिल्ली में राष्ट्रीय संग्रहालय में प्राप्त ताम्रपत्र एवं प्रस्तर–खण्ड भी इसी बात की ओर संकेत करते हैं।

यदि हम भारतीय वाङ्मय पर विचार करते हैं तो यह बात और स्पष्ट हो जाती है। जैसे – ऋग्वेद के छठें मण्डल के 53वें सूक्त की सातवीं ऋचा में एक शब्द 'आरिख' आया है, जो विद्वानों के विचार से 'आलेख' अर्थात् लिपि का ही परिवर्तित रूप है और यह सूचित करता है कि रेखाओं से ही लेखन का श्रीगणेश हुआ था। ऋग्वेद के दशम् मण्डल में भी यह बात देखने को मिलती है।

पाणिनि ने भी 'लिपि', ग्रन्थ , 'वर्ण', 'लिपिका', 'लिपिकर', 'अक्षर', 'लिपि' आदि शब्दों का प्रयोग अपने अष्टाध्यायी में किया है।

संस्कृत ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्ध जातक कथाओं में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो साफ–साफ यह जाहिर करते हैं कि उस समय स्वर्ण–पत्रों पर अक्षर खुदवाये जाते थे, राजकीय–पत्र एवं ऋणपात्र लिखे जाते थे। बौद्धों के 'विनयपिटक' में लेखन–कला की भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है। जैनियों के 'समवाय' सूत्र में भारत की अठारह लिपियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से ब्राह्मी, यवनानी, खरोष्ठिका, द्राविड़ी आदि उल्लेखनीय हैं।

13.5.1 भारत की प्राचीन लिपियाँ – भारत के प्राचीन शिलालेखों और सिक्कों का अध्ययन करने के बाद यही ज्ञात होता है कि भारत में पहले दो लिपियाँ मुख्यतया प्रचलित थीं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं – ब्राह्मी लिपि और खरोष्ठी लिपि। किन्तु यदि भारतीय ग्रंथों में खोजा जाये तो इनकी संख्या अनगिनत मिलती है। जैन धर्म के 'पन्नवणासूत्र' में 18 लिपियों का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध ग्रंथ 'ललित बिस्तर' में ऐसी 64 लिपियों का उल्लेख मिलता है। जिनमें ब्राह्मी, खरोष्ठी, अंगट्टालिपि, द्राविड़ी आदि प्रमुख हैं।

किन्तु खेद है कि अभी तक केवल दो लिपियों का पता चल पाया है। शेष लिपियों के बारे में कोई सामग्री न मिल पाने के कारण इन्हें केवल कल्पना का स्रोत मान लिया जाता है। ब्राह्मी लिपि के बारे में तो यह सिद्ध हो चुका है कि यह भारतीय लिपि ही है। जहाँ तक खरोष्ठी लिपि का सवाल है वह विवादास्पद है। डॉ. राजबली पाण्डेय का मत है कि खरोष्ठी लिपि भारत की उपज है। इसका ज्यादा प्रयोग धार्मिक एवं साहित्यिक विषयों में न होकर व्यापारिक कामकाज में होता था। भारतवासी पश्चिमी एशिया के लोगों के साथ अधिकतर वाणिज्य व्यवसाय में इसी लिपि का प्रयोग करते थे। परन्तु डॉ. बूलर, डॉ. डिरिंजर, डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा इस लिपि को भारतीय उपज नहीं स्वीकार करते हैं। ये लोग इसे आर्मेइका लिपि से विकसित मानते हैं। परन्तु खरोष्ठी लिपि में लिखित लेख भारत में भी प्राप्त हुए हैं इस तरह भारत में लिपियों के विकास की यदि सारणी बनायी जाये तो तीन लिपियाँ सामने नजर आती हैं : (1) सिन्धु घाटी की लिपि, (2) खरोष्ठी लिपि, (3) ब्राह्मी लिपि।

13.5.1.1 **सिन्धु घाटी की लिपि** – अन्य लिपियों की भांति इसका भी विकास कब विवादास्पद है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुख्यतया तीन सिद्धांत हैं – (क) द्रविड़ उत्पत्ति, (ख) सुमेरी उत्पत्ति, (ग) आर्य या असुर उत्पत्ति। द्रविड़ उत्पत्ति मूल सिद्धरंत के अग्रकर्ता हैं – एच, हेरास तथा जॉन मार्शल। इन लोगों का मत है कि सिन्धुघाटी की सभ्यता द्रविड़ों की थी और वे ही लोग उस लिपि के जनक तथा विकास करने वाले थे। दूसरी मान्यता के विचारकों, खासकर एल.ए. बैदेल तथा डॉ. प्राणनाथ का कहना है कि सिन्धु घाटी की लिपि द्रविड़ परिवार से नहीं बल्कि सुमेरी लिपि से उत्पन्न हुई है। बैदेल के अनुसार सिन्धु घाटी में चार हजार ईसा पूर्व सुमेरी लोग थे और उन्हीं की भाषा तथा लिपि वहाँ प्रचलित थी। तीसरी मान्यता के समर्थकों का कहना है कि सिन्धुघाटी में पहले आर्य ही निवास करते थे और उन्होंने ही इस लिपि का निर्माण किया था। इनका कहना है कि सिन्धुघाटी की लिपि से प्राचीन एलामाइट, सुमेरी तथा मिस्त्री लिपियों का विकास हुआ है। जो भी हो, इतना तो निर्विवाद ही है कि यह एक अत्यन्त प्राचीन लिपि है और इस लिपि में प्राचीनतम नमूने हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त हुए हैं। इस लिपि को पढ़ने के लिए लैंग्डन, हेरास, स्मिथ, गैड, हंटर ने अथक प्रयास किया, किन्तु सफलता किसी को नहीं प्राप्त हुई। हंटर की मान्यता है कि इस लिपि में 253 चित्र थे, इसके विपरीत लैंग्डन के अनुसार इसमें 228 चित्र थे। गैड एवं स्मिथ इस मत के विरोध में अपना मत स्थापित करते हुए कहते हैं, इस लिपि में 396 चित्र थे।

वस्तुस्थिति यह है कि आधार सूत्र की कमी के कारण इस लिपि की उत्पत्ति या उत्पत्ति स्थान के सम्बन्ध में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता है।

13.5.1.2 **खरोष्ठी लिपि** – खरोष्ठी लिपि के प्राचीनतम् लेख शहबाजगढ़ी और मनसेरा में मिले हैं, जो अशोककालीन प्रतीत होते हैं। इसे अन्य नामों से भी (इण्डोपैंक्तियन, काबुलियन, वैक्ट्रोपाल, आर्यन) सम्बोधित किया जाता है, पर ज्यादा प्रचलित नाम खरोष्ठी ही है। इस लिपि के बारे में दो विचार–धारायें प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् इसे भारतीय सिद्ध करते हैं और कुछ विदेशी। विदेशी माननेवालों की धारणा है कि :

1. खरोष्ठी लिपि आर्मेइक लिपि की तरह दायें से बायें लिखी जाती है।
2. काडवेल, भंडारकर आदि इतिहासकारों का कहना है कि खरोष्ठी का विकास आर्मेइक या सीरियाई लिपि से हुआ है, जो छठी शताब्दी ईसा पूर्व समस्त हमखानी साम्राज्य की राजलिपि थी और जिसका प्रयोग मिश्र से हिन्दुस्तान तक होता था।

3. गौरीचन्द्र हीराचन्द ओझा तथा डॉ. डिरिंजर का भी यही कहना है कि खरोष्ठी का सम्बन्ध आर्मेइक लिपि से है और आर्मेइक लिपि विदेशी है। अतः खरोष्ठी भारतीय लिपि नहीं है।

इसके विपरीत इसे भारतीय लिपि सिद्ध करने वाले विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं :–

1. डॉ. राजबली पाण्डेय ने 'इण्डियन पैलोग्राफी' नामक पुस्तक में लिखा है कि खरोष्ठी एक भारतीय लिपि है।
2. कुछ विद्वानों के अनुसार खरोष्ठी लिपि के निर्माता एक भारतीय ऋषि थे।
3. कतिपय विद्वान् यह सिद्ध करते हैं कि यह लिपि भारत–सीमा प्रान्त के अर्द्ध सभ्य लोगों के नाम पर विकसित हुई थी, उनके खर जैसे ओष्ठ होते थे और इसी आधार पर इसे खरोष्ठी कहते थे।

खरोष्ठी लिपि का नामकरण :

1. इसके नामकरण के पीछे बड़ा विवाद है। चीनी विश्वकोश 'फा–वान–शु–लिन' के अनुसार किसी खरोष्ठ नामक व्यक्ति ने इसे बनाया था।
2. इस लिपि का केन्द्र कभी मध्य एशिया का एक प्रान्त ''कास्गर' था, खरोष्ठ कास्गर का ही संस्कृत रूप है।
3. डॉ. प्राजिलुस्की का मत है कि यह लिपि आरम्भ में गधे की खाल पर लिखी जाती थी, इसलिए इसे पहले 'खरपृष्ठी' कहते थे। किन्तु पीछे यही नाम बिगड़कर 'खरोष्ठी' हो गया था। डॉ. राजबली पाण्डेय ने इसे खर के ओष्ठ अर्थात् गधे के ओठों के समान होने के कारण 'खरोष्ठी' कहा है। डॉ. चटर्जी के अनुसार हिंदू में 'खरोशोथ' का अर्थ लिखावट है। उसी से लिये जाने के कारण इसका नाम 'खरशोथ' पड़ा, जिसका संस्कृत रूप खरोष्ठ और उससे बना शब्द खरोष्ठी है।

किन्तु ये सभी प्राप्त मत केवल कल्पना पर आधारित हैं। अतएव इस सम्बंध में स्पष्ट कुछ कह पाना कठिन और असम्भव है।

खरोष्ठी लिपि, अरबी लिपि की तरह पहले दायें से से बायें लिखी जाती थी, परन्तु बाद में सम्भवतः ब्राह्मी लिपि के प्रभाव से बायें से दायें लिखी जाने लगी। इस लिपि में मूलतः स्वरों का अभाव था। वृत्त रेखा या अन्य चिह्नों द्वारा जो स्वरों का उल्लेख मिलता है उस पर स्पष्ट रूप से ब्राह्मी लिपि का प्रभाव परिलक्षित होता है। जो भी हो, इतना तो कहा ही जा सकता है कि खरोष्ठी लिपि एक आरम्भिक लिपि है जो न तो वैज्ञानिक है और न सर्वथा पूर्ण। इसे यदि कामचलाऊ लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया जाये तो ज्यादा उचित होगा। इसमें वर्णों की संख्या लगभग 37 है। इस लिपि में दीर्घ स्वरों के चिह्न नहीं मिलते। मात्राओं और संयुक्त स्वरों का भी एकदम अभाव है।

13.5.1.3 ब्राह्मी लिपि – ब्राह्मी भारत की सबसे प्राचीन लिपि है। इसके बारे में मुख्यतः दो मत प्रचलित हैं, प्रथम भारतीय एवं दूसरा विदेशी। भारतीय मानने वालों की मान्यतायें इस प्रकार हैं :–

1. कनिघंम, लॉवसन, थामस, डॉयसन आदि विद्वानों का विचार है कि आर्यों ने ही किसी पुरानी लिपि के आधार पर इस ब्राह्मी लिपि के आधार पर इस ब्राह्मी लिपि का विकास किया था।

2. डॉ. गौरीचन्द हीराचन्द ओझा का विचार है कि यह लिपि हमें अत्यन्त प्रौढ़ावस्था में मिली है और इसके आरम्भिक विकास का कुछ पता नहीं चलता। परन्तु इस लिपि में किसी बाहरी स्रोत और प्रभाव से विकसित होना सिद्ध नहीं होता।

3. डॉ. राजबली पाण्डेय का विचार है कि इस ब्राह्मी लिपि के कुछ चिह्न सिन्धु घाटी की लिपि से साम्य रखते हैं। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस लिपि का विकास सिन्धु घाटी की लिपि से हुआ है।

4. ब्राह्मी का अर्थ है – वैदिकी। अतः कुछ विद्वानों का विचार है कि ब्राह्मी लिपि का विकास वैदिक काल की आर्य लिपि से हुआ था। अलबरूनी ने लिखा भी है कि हिन्दुओं की वर्णमाला पहले लुप्त हो गयी थी बाद में व्यास पराशर ने 50 वर्णों की माला खोज निकाली। यही ब्राह्मी लिपि की वर्णमाला थी। व्यास का सम्बन्ध वेदों से भी रहा है और वेदपीठ तथा ब्रह्मावर्त से भी। वेदों का सम्पादन सारस्वत (ब्राह्म) प्रदेश से हुआ था। अतः यह वैदिक लिपि ही है।

5. कुछ विद्वान इस लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मा से भी मानते हैं। चीनी विश्वकोश 'फाबान–शु–लिन' (668 ई.) में इस लिपि के प्रवर्तक ब्रह्म नाम के कोई आचार्य बतलाये इसके ब्राह्मी नाम से पुकारे जाने का अनुमान लगाते हैं।

6. ईसवी सन् के पूर्व से प्रचलित होने के कारण इसके प्राचीनतम नमूने, पिपरा आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इन शिलालेखों से यह अनुमान लगता है कि यह अत्यन्त प्राचीन एवं भारतीय लिपि है।

7. जगमोहन वर्मा ने 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित अपनी लेखमाला (1913–15) के अंतर्गत सिद्ध किया कि इस ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति वैदिक चित्रलिपि से हुई थी। इन्होंने सिन्धुघाटी, ब्राह्मी एवं नागरी लिपि में समानता खोज निकाली है। इस खोज का निष्कर्ष यही है कि ब्राह्मी की उत्पत्ति भारत में हुई :

इसके विपरीत फ्रेन्च विद्वान् कुपेरी इसे चीनी लिपि से, डॉ. अल्फ्रेडमूलर, जेम्स पिसेंप तथा सेनार्ट आदि ने यूनानी लिपि से, डॉ. बूलर ने इसे 'सेमेटिक लिपि' से, बेवर, क्रस्ट आदि ने सामी से, एडवर्ड थामस द्रविड़ से, डॉ. डिरिंजर ने इसे उत्तरी सीमा लिपि से, टेलर, केनन, सेथ ने इसे दक्षिणी सीमा से, जानसन और वेनफ ने फिनीश लिपि से, डॉ. आर.एम. साहा ने अरबी लिपि से तथा डीके ने असीरिया में कीलाक्षरों से निकली सामी लिपि से, इसे विकसित माना है।

वस्तुतः इस लिपि की उत्पत्ति भारत में ही हुई। इसका निर्माण वैदिक साहित्य की रक्षा के लिए अत्यन्त प्राचीन काल में ही हो गया था और इसे उन्हीं ऋषियों, मुनियों ने बनाया था, जिन्होंने ध्वनिशास्त्र, व्याकरण, शब्द–विज्ञान, पदपाठ पद्धति आदि का आविष्कार किया था।

13.5.1.3.1 ब्राह्मी लिपि का विकास : ब्राह्मी लिपि के सम्बन्ध में जो सबसे प्राचीन सामग्री मिलती है वह पाँचवीं शताब्दी ई.पू. तक की है। पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व से 350 ईसा पूर्व तक इसका एक रूप मिलता है। बाद में यह दो

धाराओं में विभक्त हो गयी, जो 'उत्तरी धारा' एवं 'दक्षिणी धारा' के नाम से सम्बोधित हुई। वस्तुतः ब्राह्मी ही वह लिपि है जो समस्त भारतीय लिपियों की जननी है।

13.5.1.3.1.1 उत्तरी धारा : यह धारा मुख्य रूप से उत्तरी भारत में प्रचलित रही। यह लिपि बाद में फिर चार रूपों में विभक्त हो गयी–गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, शारदा लिपि और प्राचीन नागरी लिपि।

(1) **गुप्त लिपि** : गुप्त वंश के शासन काल में विकसित होने के कारण इस लिपि का नाम गुप्त लिपि पड़ा। यह लिपि ईसा की चौथी और पाँचवीं शताब्दी में प्रचलित हुई थी। गुप्त राजाओं के लेख इस लिपि में प्राप्त होते हैं।

(2) **कुटिल लिपि** : यह लिपि गुप्त लिपि का ही विकसित दूसरा रूप है। इसमें अक्षर टेढ़े होते थे। विद्वानों ने शायद इसीलिए इसका नाम 'कुटिल लिपि' रखा। उत्तरी भारत में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक यह विशेष प्रचलित थी।

(3) **शारदा लिपि** : कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी 'शारदा' के नाम पर इसका नाम शारदा लिपि रखा गया। यह ईसा की दसवीं शताब्दी तक विकसित हुई थी। कश्मीरी, टक्करी, लंडा, गुरुमुखी, डोगरी, चमेआली तथा कच्छी लिपियाँ इसी लिपि की उपज है। शारदा लिपि मुख्यतया कुटिल लिपि का विकसित रूप है।

(4) **प्राचीन नागरी लिपि** : इस लिपि का भी विकास कुटिल लिपि से ही हुआ है। ईसा की नवीं शताब्दी में यह अधिक प्रचलित थी। दक्षिणी भारत में इसे 'नन्दनागरी' के नाम से भी पुकारा जाता था। आधुनिक युग की देवनागरी, गुजराती, महाजनी, मैथिली, कैथी, राजस्थानी, महाराष्ट्री, बंगला आदि लिपियाँ इसी से विकसित हुई हैं। इसका प्रचार कुछ रूपों में सोलहवीं शताब्दी तक मिलता है।

13.5.1.3.1.2 दक्षिणी धारा : दक्षिणी भारत में इस लिपि का विकास होने के कारण इसे दक्षिणी धारा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस धारा के अंतर्गत छः लिपियाँ विकसित थीं –तेलुगू, कन्नड़, ग्रन्थ, तमिल, कलिंग, मध्यदेशी और पश्चिमी लिपि।

(1) **तेलुगू कन्नड़ लिपि** : यह लिपि ईसा की पाँचवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक दक्षिणी भारत में प्रचलित रही। प्रचार क्षेत्र आन्ध्र का दक्षिणी भाग, तमिलनाडु का उत्तरी पूर्वी भाग तथा कर्नाटक था। चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् आधुनिक तेलुगू एवं कन्नड़ लिपियों का विकास हुआ है।

(2) **ग्रन्थ लिपि** : इस लिपि का विकास भी दक्षिणी धारा से हुआ था। संस्कृत ग्रन्थों में इसका अधिकतर प्रयोग होता था क्योंकि इस लिपि का प्रचार तमिलनाडु में था और वहाँ की तमिल लिपि अपूर्ण थी। ईसा की सातवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक यह लिपि प्रचलित रही।

(3) **तमिल लिपि** : इस लिपि का विकास ईसा की सातवीं शताब्दी में ही होना शुरू हो गया था। ग्रन्थ लिपि और इस लिपि में काफी समानता मालूम पड़ती है। इसके 'क' और 'र' व्यंजन ब्राह्मी लिपि की उत्तरी धारा से गए हुए प्रतीत होते हैं। वर्तमान तमिल लिपि का भी विकास इसी से हुआ है।

(4) **कलिंग लिपि** : कलिंग में खास तौर पर प्रचलित होने के कारण इसका नाम कलिंग लिपि पड़ गया। मध्यदेशी, पश्चिमी ग्रंथ, तेलुगू कन्नड़ी, नागरी आदि लिपियों का भी प्रभाव बराबर इस लिपि पर पड़ता रहा।

(5) **मध्यदेशी लिपि** : दक्षिणी धारा से विकसित होते हुए भी यह लिपि उत्तरी धारा से जुड़ी हुई है। मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, हैदराबाद आदि क्षेत्रों में यह ईसा की पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक विकसित रही। इसके अक्षर चौखटे अथवा सन्दूक की आकृति के होते थे।

(6) **पश्चिमी लिपि** : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह लिपि पश्चिमी क्षेत्रों की थी। गुजरात, काठियावाड़, नासिक, खानदेश, सतारा जिला, हैदराबाद तथा मैसूर के कुछ भाग इस लिपि के मुख्य केन्द्र स्थल थे।

13.5.1.3.1.3 देवनागरी लिपि : 1. नामकरण : ब्राह्मी लिपि से विकसित नागरी लिपि से ही देवनागरी लिपि की उत्पत्ति हुई है। इसके नामकरण के बारे में विद्वानों में बड़ा मतभेद हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण विचारधाराएँ इस प्रकार हैं :

1. कुछ विद्वानों का विचार है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों में इसका सबसे ज्यादा प्रचार था, इसलिए इसका नाम देवनागरी पड़ा।
2. कुछ विद्वान बौद्धग्रंथ 'ललित विस्तर' में उल्लिखित 'नागरी लिपि' से इसका सम्बन्ध बताते हैं।
3. नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा।
4. एक मत और प्रचलित है, वह यह कि 'पाटलिपुत्र' को 'नागर' और चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'देव' कहा जाता था। उन्हीं के नाम पर इस लिपि का देवनागरी नामकरण किया गया।
5. कुछ विद्वानों का विचार है कि काशी को पहले देवनगर कहा जाता था। काशी में इसका सर्वाधिक प्रचार होने के कारण अथवा काशी विद्या का केन्द्र होने के कारण उसी 'देवनगर' के नाम के आधार पर इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ गया; जैसे – दक्षिण में नन्दनगर के आधार पर 'नन्दि नागरी लिपि' नाम पड़ा है।
6. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि मध्ययुग के स्थापत्य की एक शैली का नाम नागर था, जिसमें चौकोर आकृतियाँ होती थीं। इस नागरी लिपि के अधिकांश अक्षर भी चौकोर होते हैं। इसी आधार पर इसे नागरी या सम्मान देने के लिए देवनागरी लिपि कहा गया है।

उक्त सभी मतों में से कौन सा मत अधिक तर्कसंगत है इसे स्पष्ट कर पाना एकदम कठिन तथा असम्भव है। किन्तु इतना तो जरूर है कि जिस प्रकार श्रेष्ठ वाङ्मय वाली भाषा संस्कृत को परिष्कृत एवं परिमार्जित होने के कारण देववाणी कहा जाता है, उसी तरह संस्कृत वाङ्मय लिपिबद्ध करने के कारण इस परिष्कृत एवं परिमार्जित नागरी लिपि को देवनागरी नाम दिया गया है।

13.6 उपसंहार –

लिपि के विकास–क्रम में प्राप्त छह प्रकार की लिपियों का ऊपर परिचय दिया गया है। विकास'–क्रम की क्रमिक सीढ़ी की दृष्टि से सूत्रलिपि तथा भावाभिव्यक्ति की प्रतीकात्मक पद्धति (या प्रतीकात्मक लिपि) का विशेष स्थान नहीं है। वे दोनों भाव प्रकट करने की विशिष्ट पद्धतियाँ हैं जो किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से आज तक चली आ रही है। उनका न तो उनकी पूर्ववर्ती चित्रलिपि में कोई सम्बन्ध है और न बाद की भावमूलक या ध्वनिमूलक लिपि से। दूसरे शब्दों में न तो ये दोनो चित्रलिपि से विकसित हुई हैं और न इनसे उनके बाद प्रचलन में आने वाली भावमूलक या ध्वनिमूलक लिपियाँ।

इन दो को छोड़ देने पर शेष चार प्रकार की लिपियाँ बचती हैं। इनमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रारम्भिक लिपि चित्रलिपि है। चित्र का ही विकसित रूप भावमूलक लिपि है; और आगे चलकर भावमूलक लिपि विकसित होकर भावध्वनिमूलक लिपि और फिर ध्वनिमूलक हुई है। ध्वनिमूलक में भी आक्षरिक ध्वनिमूलक लिपि प्रारम्भिक है और वर्णिक ध्वनिमूलक लिपि उससे विकसित तथा बाद की है।

इस प्रकार लिपि के विकास–क्रम में चित्रलिपि प्रथम अवस्था की लिपि है और वर्णिक ध्वनिमूलक लिपि अन्तिम अवस्था की।

13.7 कठिन शब्द

आद्यरूप

अक्षुण्ण

वाङ्मय

खरोष्ठी

परिष्कृत

वर्णिक

13.8 अभ्यास प्रश्न

प्र.1 लिपि की उत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए चित्रलिपि का संक्षिप्त परिचय दीजिए?

____

____

____

____

____

प्र.2 लिपियों के विकास पर प्रकाश डालिए?

____

____

____

____

____

प्र.3 भारत की प्राचीन लिपियों पर संक्षेप में विचार प्रस्तुत कीजिए?

____

____

____

____

____

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, उदयनारायण तिवारी
2. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा
4. हिन्दी भाषा की संरचना, भोलानाथ तिवारी
5. हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, डॉ. राजमणि शर्मा

B.A. HINDI **UNIT-V** **Lesson No. 14**
COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

देवनागरी लिपि : नामकरण एवं विकास

14.1 रूपरेखा

14.2 उद्देश्य

– देवनागरी लिपि के नामकरण को समझ सकेंगे

– देवनागरी लिपि के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।

14.3 प्रस्तावना

14.4 देवनागरी लिपि : नामकरण

14.5 देवनागरी लिपि का उद्‌भव और विकास

14.6 उपसंहार

14.7 कठिन शब्द

14.8 अभ्यास प्रश्न

14.3 प्रस्तावना –

भारतवर्ष में अनेक लिपियाँ प्रचलित हैं। रोमन और अरबी लिपियों को छोड़कर शेष का उद्‌गम भारत में ही हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हिन्दी प्रदेशों में रोमन और अरबी लिपि प्रमुख थीं। देवनागरी का स्थान गौण था, किन्तु अब देवनागरी का स्थान प्रमुख है। संस्कृत, हिन्दी, नेपाली और मराठी के लिए सदैव ही देवनागरी का प्रयोग होता रहा है। आज जिस प्रकार हिन्दी व्यापक भाषा है, उसी प्रकार देवनागरी लिपि भी। केन्द्रीय सरकार ने इसलिए हिन्दी राष्ट्रभाषा के साथ देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया है।

जैसे कि पूर्व ही संकेत दिया गया है, अन्य भारतीय लिपियों के समान देवनागरी लिपि का विकास 'ब्राह्मी लिपि' से हुआ है। ईसा की तीसरी शताब्दी तक भारतवर्ष में ब्राह्मी लिपि का प्रचार रहा है। चौथी शताब्दी के आरम्भ में ही उत्तर और दक्षिण की ब्राह्मी लिपि में अंतर लक्षित होने लगा। आगे चलकर उत्तरी ब्राह्मी लिपि को 'गुप्त लिपि' कहा

गया है। गुप्त राजाओं के समय में इसका व्यापक रूप में चलन होने के कारण इसे 'गुप्त लिपि' कहा जाता है। 'गुप्त लिपि' के विकसित रूप को ही आगे चलकर 'कुटिल' नाम दिया गया। इस अवस्था में पहुँचकर स्वरों की मात्राओं की आकृति कुटिल होने लगी थी, इसलिए इसे कुटिल लिपि कहा गया। उत्तर भारत में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक यह लिपि प्रचलित रही। इसी लिपि से देवनागरी लिपि का विकास हुआ है। अतः 10वीं शताब्दी देवनागरी लिपि का जन्म काल कहा जा सकता है।

देवनागरी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 453 ई. में जैन ग्रंथों में उल्लेखित है, देवनागरी लिपि का विकास उत्तर भारतीय ऐतिहासिक गुप्त लिपि से माना गया है। परन्तु इसकी व्युत्पत्ति का स्रोत ब्राह्मी वर्णाक्षर है, जिसने सभी आधुनिक भारतीय लिपियों तथा भाषाओं के विकास में सहयोग किया है। देवनागरी लिपि को सर्वाधिक पूर्णतर कहा जा सकता है। भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण एवं शब्दावली के अनुसार इसे अक्षरात्मक कहा जाता है। इसकी पूर्णता इससे ज्ञात होती है कि यह लिखित एवं उच्चारित दोनों रूपों में एक समान है, इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए उपयुक्त संकेतों की व्यवस्था है।

देवनागरी एक लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ तथा कुछ विदेशी भाषाएँ लिखीं जाती हैं। संस्कृत, पालि, हिन्दी, मराठी, कोंकणी, सिन्धी, कश्मीरी, नेपाली, गढ़वाली, बोडो, अंगिका, मगही, भोजपुरी, मैथिली, संथाली आदि भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं। इसे नागरी लिपि भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, विष्णुपुरिया मणिपुरी, रोमन और उर्दू भाषाएं भी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

14.4 देवनागरी लिपि : नामकरण –

'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसको केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' कह देते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खंड का प्रमाण देते हैं। नागर खंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'। गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) को ही 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यह मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उत्तरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी। सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने के कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह 'ब्राह्मी' ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही

प्रसिद्ध रहा।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की प्राप्त हुई है जो सिन्धु नदी के पार प्रदेशों (गाँधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सभी स्थानों पर ज़्यादातर एक ही रूप की मिलती है। उत्तर भारत में नागरी लिपि के लेख 8वीं'–9वीं शताब्दी से मिलने लग जाते हैं। दक्षिण भारत में इसके लेख कुछ पहले से मिलते हैं। वहाँ यह 'नदिनागरी' है। 'ललित–विस्तार' बी 64 लिपियों में एक 'नाग लिपि' नाम मिलता है। किंतु 'नाग लिपि' के आधार पर नागरी नाम संभव नहीं जान पड़ता। आज समस्त उत्तर भारत में और नेपाल में भी और संपूर्ण महाराष्ट्र में देवनागरी लिपि का प्रयोग होता है।

ईसी की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में लगती है। किस प्रकार अशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते–होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नक्शे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है। वह नक्शा यहाँ अलग छापकर लगा दिया गया है जिससे नागरी लिपि का क्रमशः विकास स्पष्ट हो जायगा। इन अक्षरों का पहला रूप अशोक लिपि का है उसके उपरांत, दूसरे, तीसरे, चौथे क्रमशः पीछे के हैं जो भिन्न–भिन्न प्राचीन लेखों से चुने गए हैं।

शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि के नामकरण किस प्रकार हुआ, यह विवादस्पद है। इतना अवश्य तय है कि इस लिपि को समस्त भारतीयों की लिपि कहा जा सकता है।

14.5 देवनागरी लिपि का उद्‌भव और विकास –

लगभग ई. 350 के बाद ब्राह्मी की दो शाखाएँ लेखन शैली के अनुसार मानी गई हैं। विंध्या से उत्तर की शैली उत्तरी तथाा दक्षिण की (बहुधा) दक्षिणी शैली।

1. उत्तरी शैली के प्रथम रूप का नाम 'गुप्तलिपि' है। गुप्तवंशीय राजाओं के लेखों में इसका प्रचार था। इसका काल ईसवी चौथी पाँचवी शती है।
2. कुटिल लिपि काविकास 'गुप्तलिपि' से हुआ और छठी से नवीं शती तक इसका प्रचलन मिलता है। आकृतिगत कुटिलता के कारण यह नामकरण किया गया। इसी लिपि से नागरी का विकास नवीं शती के अंतिम चरण के आसपास माना जाता है।

'राष्ट्रकूट' राजा 'दंतदुर्ग' के एक ताम्रपत्र के आधार पर दक्षिण में 'नागरी' का प्रचलन संवत् 675 (754 ई.) में था। वहाँ इसे 'नंदिनागरी' कहते थे। राजवंशों के लेखों के आधार पर दक्षिण में 16वीं शती के बाद तक इसका अस्तित्व मिलता है। देवनागरी (या नागरी) से ही 'कैथी', 'महाजनी', 'राजस्थानी' और 'गुजराती' आदि लिपियों का विकास

हुआ। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शती के आसपास 'बँगली' का आविर्भाव हुआ। 11वीं शताब्दी के बाद की 'नेपाली'तथा वर्तमान 'बँगला', 'मैथिली', एवं 'उड़िया', लिपियाँ इसी से विकसित हुई। भारतवर्ष के उत्तर पश्चिमी भागों में (जिसे सामान्यतः आज कश्मीर और पंजाब कहते हैं) ई. 8वीं शती तक 'कुटिललिपि' प्रचलित थी। कालांतर में ई. 10वीं शताब्दी के आस पास 'कुटिल लिपि' से ही 'शारद लिपि' का विकास हुआ। वर्तमान कश्मीरी, टाकरी (और गुरमुखी के अनेक वर्णसंकेत) उसी लिपि के परवर्ती विकास हैं।

दक्षिणी शैली की लिपियाँ प्राचीन ब्राह्मी लिपि के उस परिवर्तित रूप से निकली हैं जो क्षत्रप और आंध्रवंशी राजाओं के समय के लेखों में तथा उनसे कुछ पीछे के दक्षिण की नासिक, कार्ली आदि गुफाओं के लेखों में पाया जाता है। (भारतीय प्राचीन लिपिमाला)।

इस प्रकार निम्नलिखित बातें सामने आती हैं –

1. मूल रूप में 'देवनागरी' का आदिस्त्रोत ब्राह्मी लिपि है।
2. यह ब्राह्मी की उत्तरी शैली वाली धारा की एक शाखा है।
3. गुप्त लिपि के उद्भव के पूर्व भी अशोक ब्राह्मी में थोड़ी बहुत अनेक छोटी मोटी भिन्नताएँ कलिंग शैली, हाथीगुफा शैली, शुंगशैली आदि के रूप में मिलती हैं।
4. गुप्तलिपि की भी पश्चिमी और पूर्वी शैली में स्वरूप अंतर है। पूर्वी शैली के अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा दिखाई पड़ने लगती है। इसे सिद्धमात्रिका कहा गया है।
5. उत्तरी शाखा में गुप्तलिपि के अनंतर कुटिल लिपि आती है। मंदसोर मधुवन, जोधपुर आदि के 'कुटिललिपि' कालीन अक्षर 'देवनागरी' से काफी मिलते जुलते हैं।
6. देवनागरी' के आद्यरूपों का निरंतर थोड़ा बहुत रूपांतर होता गया जिसके फलस्वरूप आज का रूप सामने आया।
7. कुछ स्वरध्वनियों के लिए तथा कुछ विदेशी व्यंजन ध्वनियों के लिए 'देवनागरी' में सुधार अपेक्षित है।

मध्यकाल में देवनागरी – देवनागरी लिपि मुस्लिम शासन के दौरान भी प्रयुक्त होती रही है। भारत की प्रचलित अति प्राचीन लिपि देवनागरी ही रही है। विभिन्न मूर्ति–अभिलेखों, शिखा–लेखों ,ताम्रपत्रों आदि में भी देवनागरी लिपि के सहस्राधिक अभिलेख प्राप्य हैं, जिनका काल खंड सन 1008 ई. के आसपास है। इसके पूर्व सारनाथ में स्थित अशोक स्तम्भ के धर्मचक्र के निम्न भाग देवनागरी लिपि में भारत का राष्ट्रीय वचन 'सत्यमेव जयते' उत्कीर्ण है। इस स्तम्भ का निर्माण सम्राट अशोक ने लगभग 250 ई. पूर्व में कराया था। मुसलमानों के भारत आगमन के पूर्व से, भारत की देशभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी या उसका रूपान्तरित स्वरूप था, जिसके द्वारा सभी कार्य सम्पादित किए जाते थे।

मुसलमानों के राजत्व काल के प्रारम्भ (सन् 1200 ई.) से सम्राट अकबर के राजत्व काल (1556 ई.–1605 ई.)

के मध्य तक राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रचलन था। भारतवासियों की फारसी भाषा से अनभिज्ञता के बावजूद उक्त काल में, दीवानी और फौजदारी कचहरियों में फारसी भाषा और उसकी लिपि का ही व्यवहार था। यह मुस्लिम शासकों की मातृभाषा थी।

भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात कालान्तर में संस्कृत का गौरवपूर्ण स्थान फारसी को प्राप्त हो गया। देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भारतीय शिष्टों की शिष्ट भाषा और धर्मभाषा के रूप में तब कुंठित हो गई। किन्तु मुस्लिम शासक देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सके। महमूद गजनवी ने अपने राज्य के सिक्कों पर देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा को स्थान दिया था।

औरंगजेब के शासन काल (1658 ई.–1707 ई.) में अदालती भाषा में परिवर्तन नहीं हुआ, राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि ही प्रचलित रही। फारसी किबाले, पट्टे रेहन्नामे आदि का हिन्दी अनुवाद अनिवार्य ही रहा। औरंगेजेब राजत्व काल, औरंगजेब परवर्ती मुसलमानी राजत्व काल (1707 ई. से प्रारंभ) एवं ब्रिटिश राज्यारम्भ काल (23 जून 1757 ई. से प्रारंभ) नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के उत्तरार्ध में उक्त हिन्दी अनुवाद की प्रथा का उन्मूलन अदालत के अमलों की स्वार्थ–सिद्धि के कारण हो गया और ब्रिटिश शासकों ने इस ओर ध्यान दिया। फारसी किबाले, पट्टे, रेहन्नामे आदि के हिन्दी अनुवाद का उन्मूलन किसी राजाज्ञा के द्वारा नहीं, सरकार की उदासीनता और कचहरी के कर्मचारियों के फारसी मोह के कारण हुआ। इस मोह में उनका स्वार्थ संचित था। सामान्य जनता फारसी भाषा से अपरिचित थी। बहुसंख्यक मुकदमेबाजी मुवक्किल भी फारसी से अनभिज्ञ ही थे। फारसी भाषा के द्वारा ही कचहरी के कर्मचारीगण अपना उल्लू सीधा करते थे।

शेरशाह सूरी ने अपनी राजमुद्राओं पर देवनागरी लिपि को समुचित स्थान दिया था। शुद्धता के लिए उसके फारसी के फरमान फारसी और देवनागरी लिपियों में समान रूप से लिखे जाते थे। देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी परिपत्र सम्राट अकबर (शासन काल 1556 ई.–1605 ई.) के दरबार में निर्गत–प्रचारित किये जाते थे, जिनके माध्यम से देश के अधिकारियों, न्यायाधीशों, गुप्तचरों, व्यापारियों, सैनिकों और प्रजाजनों को विभिन्न प्रकार के आदेश–अनुदेश प्रदान किए जाते थे। इस प्रकार के चौदह पत्र राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में सुरक्षित हैं।

औरंगजेब परवर्ती मुगल सम्राटों के राज्यकार्य से सम्बद्ध देवनागरी लिपि में हस्तलिखित बहुसंख्यक प्रलेख उक्त अभिलेखागार में दृष्टव्य हैं, जिनके विषय तत्कालीन व्यवस्था–विधि, नीति, पुरस्कार, दंड, प्रशंसा–पत्र, जागीर, उपाधि, सहायता, दान, क्षमा, कारावास, गुरूगोविंद सिंह, कार्यभार ग्रहण, अनुदान, सम्राट की यात्रा, सम्राट औरंगजेब की मृत्यु सूचना, युद्ध सेना–प्रयाण, पदाधिकारियों को सम्बोधित आदेश–अनुदेश, पदाधिकारियों के स्थानान्तरण–पदस्थानपन आदि हैं।

मुगल बादशाह हिन्दी के विरोधी नहीं, प्रेमी थे। अकबर जहांगीर, शााहजहां आदि अनेक मुगल बादशाह हिन्दी के अच्छे कवि थे।

मुगल राजकुमारों को हिन्दी की भी शिक्षा दी जाती थी। शाहजहां ने स्वयं दाराशिकोह और शुजा को संकट के क्षणों में हिंदी भाषा और हिन्दी अक्षरों में पत्र लिखा था, जो औरंगजेब के कारण उन तक नहीं पहुंच सका। आलमगीरी

शासन में भी हिन्दी को महत्व प्राप्त था। औरंगजेब ने शासन और राज्य–प्रबंध की दृष्टि से हिन्दी–शिक्षा की ओर ध्यान दिया और उसका सुपुत्र आजमशाह हिन्दी का श्रेष्ठ कवि था। मोजमशाह शाहआलम बहादुर शाह जफर (शासन काल 1707 ई.– 1712 ई.) का देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी काव्य प्रसिद्ध है। मुगल बादशाहों और मुगल दरबार का हिन्दी कविताओं की प्रथम मुद्रित झांकी 'राग सागरोद्‌भव संगीत रागकल्पद्रुम' (1842–43 ई.), शिवसिंह सरोज आदि में सुरक्षित है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में देवनागरी – उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में एक तरफ अँग्रेजों के आधिपत्य के कारण अंग्रेजी के प्रसार–प्रचार का सुव्यवस्थित अभियान चलाया जा रहा था तो दूसरी तरफ राजकीय कामकाज में और कचहरी में उर्दू समादृत थी। धीरे–धीरे उर्दू के फैशन और हिन्दी विरोध के कारण देवनागरी अक्षरों का लोप होने लगा। अदालती और राजकीय कामकाज में उर्दू का बोल बाला होने से उर्दू पढ़े–लिखे लोगों की भाषा बनने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उर्दू की व्यापकता थी। खड़ी बोली का अरबी–फारसी रूप ही लिखने–पढ़ने की भाषा होकर सामने आ रहा था। हिन्दी को इससे बड़ा आघात पहुँचा।

कहा जाता है कि हिन्दी वाले भी अपनी पुस्तकें फारसी में लिखने लगे थे, जिसके कारण देवनागरी अक्षरों का भविष्य ही खतरे में पड़ गया था। जैसा कि बालमुकुन्द जी की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है – "जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वे फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए और हिन्दी भाषा हिन्दी न रहकर उर्दू बन गयी। हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी–फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी।"

उस समय अनेक विचारक, साहित्यकार और समाजकर्मी हिन्दी और नागरी के समर्थन में उस समय मैदान में उतरे। यह वह समय था जब हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार और परिमार्जन नहीं हो सका था अर्थात् हिन्दी गद्य का कोई सुव्यवस्थित और सुनिश्चित नहीं गढ़ा जा सका था। खड़ी बोली हिन्दी घुटनों के बल ही चल रही थी। वह खड़ी होने की प्रक्रिया में तो थी। मगर नहीं हो पा रही थी।

सन् 1796 ई. – मुद्राक्षर आधारित देवनागरी लीपि में प्राचीनतम मुद्रण (जा गिलक्राइस्ट, हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण, कोलकाता)।

सन् 1884 – प्रयाग में मालवीयजी के प्रयास से हिन्दी हितकारिणी सभाा की स्थापना की गई।

सन् 1893 ई. – काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना

सन् 1894 – मेरठ के पंडित गौरीदत्त ने न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए ज्ञापन दिया जो अस्वीकृत हो गया।

सन् 1897 – नागरी प्राचारिणी सभा द्वारा गठित समिति ने 60,000 हस्ताक्षरों से युक्त प्रतिवेदन अंग्रेज सरकार को दिया। इसमें विचार व्यक्त किया गया था कि संयुक्त प्रान्त में केवल देवनागरी को ही न्यायालयों की भाषा होने का अधिकार है।

20 अगस्त सन् 1896 – राजस्व परिषद ने एक प्रस्ताव पास किया कि सम्मन आदि की भाषा एवं लिपि हिन्दी होगी परन्तु यह व्यवस्था कार्य रूप में परिणित नहीं हो सकी।

15 अगस्त सन् 1900 – शासन ने निर्णय लिया कि उर्दू के अतिरिक्त नागरी लिपि को भी अतिरिक्त भाषा के रूप में व्यवहृत किया जाये।

सितंबर 1949 – संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी निर्धारित की गयी।

देवनागरी का विकास उत्तर भारतीय ऐतिहासिक गुप्त लिपि से हुआ, हालांकि अंततः इसकी व्युत्पत्ति ब्राह्मी वर्णाक्षरों से हुई, जिससे सभी आधुनिक भारतीय लिपियों का जन्म हुआ है। सातवीं शताब्दी से इसका उपयोग ही रहा है, लेकिन इसके परिपक्व स्वरूप का विकास 11वीं शताब्दी में हुआ। उच्चरित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की अभिव्यक्ति 'भाषा' कहलाती है। जबकि लिखित वर्ण संकेतों की सहायता से भाव या विचार की अभिव्यक्ति लिपि। भाषा श्रव्य होती है, जबकि लिपि दृश्यमान होती है। भारत की सभी लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से ही निकली हैं। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग वैदिक आर्यों ने शुरू किया। ब्राह्मी लिपि का प्राचीनतम नमूना 5वीं सदी BC का है जो कि बौद्धकालीन है। गुप्तकाल के प्रारम्भ में ब्राह्मी के दो भेद हो गए, उत्तरी ब्राह्मी व दक्षिणी ब्राह्मी। दक्षिणी ब्राह्मी से तमिल लिपि/कलिंग लिपि, , तेलुगु एवं कन्नड़ लिपि, ग्रंथ लिपि तमिलनाडु, मलयालम लिपि का विकास हुआ।

उत्तरी ब्राह्मी से नागरी लिपि का विकास –

उत्तरी ब्राह्मी (350 ई. तक)

गुप्त लिपि (चौथी–पांचवी सदी)

सिद्धमातृका लिपि (छठी सदी)

कुटिल लिपि (आठवीं–नौवीं सदी)

नागरी शारदा

गुरूमुखी कश्मीरी लहंदा टाकरी

नागरी लिपि का प्रयोग काल 8वीं–9वीं सदी ई. से आरम्भ हुआ। 10वीं से 12वीं सदी के बीच इसी प्राचीन नागरी से उत्तरी भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियों का विकास हुआ। इसकी पश्चिमी व पूर्वी दो शाखाएँ मिली हैं। पश्चिमी शाखा की सर्वप्रमुख/प्रतिनिधि लिपि देवनागरी लिपि है।

हिन्दी भाषा की लिपि के रूप में विकास

देवनागरी पर महापुरुषों के विचार – हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि दे सकती है।

आचार्य विनोबा भावे – हमारी नागरी दुनिया की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है।

राहुल सांकृत्यायन – हिंदुस्तान के लिये देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता।

महात्मा गाँधी – उर्दू लिखने के लिये देवनागरी लिपि अपनाने में उर्दू उत्कर्ष को प्राप्त होगी।

खुशवन्त सिंह – समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

कृष्णस्वामी अय्यर (न्यायाधीश) – बँगला वर्णमाला की जाँच से मालूम होता है कि देवनागरी लिपि से निकली है और इसी का सीधा सादा रूप है।

रमेशचंद्र दत्त – देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

रविशंकर शुक्ल – देवनागरी लिपि को हिन्दी भाषा की अधिकृत लिपि बनने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। अंग्रेजों की भाषा नीति फारसी की ओर अधिक झुकी हुई थी। इसीलिए हिन्दी को भी फारसी लिपि में लिखने का षडयंत्र किया गया।

जॉन गिलक्राइस्ट – हिन्दी भाषा और फारसी लिपि का घालमेल फोर्ट विलियम कॉलेज (1800–54) की देन थी। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के सर्वप्रथम अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट थे। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ थीं – दरबारी या फारसी शैली, हिन्दुस्तानी शैली च हिन्दवी शैली। वे फारसी शैली को दुरूह तथा हिन्दवी शैली को गँवारू मानते थे। इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तानी शैली को प्राथमिकता दी। उन्होंने हिन्दुस्तानी के जिस रूप को बढ़ावा दिया, उसका मूलाधार तो हिन्दी ही था, किन्तु उसमें अरबी–फारसी शब्दों की बहुलता थी और वह फारसी लिपि में लिखी जाती थी। गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी के नाम पर असल में उर्दू का ही प्रचार किया।

विलियम प्राइस – 1823 ई. में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप में विलियम प्राइस की नियुक्ति हुई। उन्होंने हिन्दुस्तानी के नाम पर हिन्दी पर बल दिया। प्राइस ने गिलक्राइस्ट द्वारा जनित भाषा–सम्बन्धी भ्रान्ति को दूर करने का प्रयास किया। लेकिन प्राइस के बाद कॉलेज की गतिविधियों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई।

अदालत सम्बन्धी विज्ञप्ति (1837 ई.) – वर्ष 1830 ई. में अंग्रेज कम्पनी के द्वारा अदालतों में फारसी के साथ–साथ देशी भाषाओं को भी स्थान दिया गया। वास्तव में, इस विज्ञप्ति का पालन 1837 ई. में शुरू हो सका। इसके बाद बंगाल में बांग्ला भाषा और बांग्लालिपि प्रचलित हुई। संयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश, बिहार व मध्य प्रान्त मध्य प्रदेश में भाषा के रूप में तो हिन्दी का प्रचलन हुआ, लेकिन लिपि के मामले में नागरी लिपि के स्थान पर उर्दू लिपि का प्रचार किया जाने लगा। इसका मुख्य कारण अदालती अमलों की कृपा तो थी ही, साथ ही मुसलमानों ने भी धार्मिक आध ार पर जी–जान से उर्दू का समर्थन किया और हिन्दी को कचहरी से ही नहीं शिक्षा से भी निकाल बाहर करने का आंदोलन चालू किया।

1857 के विद्रोह के बाद हिन्दू – मुसलमानों के पारस्परिक विरोध में ही सरकार अपनी सुरक्षा समझने लगी। अतः भाषा के क्षेत्र में उनकी नीति भेदभावपूर्ण हो गई। अंग्रेज विद्वानों के दो दल हो गए। दोनों ओर से पक्ष–विपक्ष में अनेक तर्क–वितर्क प्रस्तुत किए गए। बीम्स साहब उर्दू का और ग्राउस साहब हिन्दी का समर्थन करने वालों में प्रमुख थे।

नागरी लिपि और हिन्दी तथा फारसी लिपि और उर्दू का अभिन्न सम्बन्ध हो गया। अतः दोनों के पक्ष–विपक्ष में काफी विवाद हुआ।

राजा शिव प्रसाद 'सितारे–हिन्दी' का लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन (1868 ई.) – फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के लिए पहला प्रयास राजा शिवप्रसाद का 1868 ई. में उनके लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन 'मेमोरण्डम कोर्ट कैरेक्टर इन द अपर प्रोविन्सऑफ इंडिया' से आरम्भ हुआ।

जॉन शोर – एक अंग्रेज अधिकारी फ्रेडरिक जॉन शोर ने फारसी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रयोग पर आपत्ति व्यक्त की थी और न्यायालय में हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपि का समर्थन किया था।

बंगाल के गवर्नर ऐशले के आदेश (1870 ई. व 1873 ई.) – वर्ष 1870 ई. में गवर्नर ऐशले ने देवनागरी के पक्ष में एक आदेश जारी किया, जिसमें कहा गया कि फारसी–पूरित उर्दू नहीं लिखी जाए। बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाए जो एक कुलीन हिन्दुस्तानी फारसी से पूर्णतया अनभिज्ञ रहने पर भी बोलता है। वर्ष 1873 ई. में बंगाल सरकार ने यह आदेश जारी किया कि पटना, भागलपुर तथा छोटा नागपुर डिविजनों (संभागों) के न्यायालयों व कार्यालयों में सभी विज्ञाप्तियाँ तथा घोषणाएँ हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि में ही की जाएँ।

वर्ष 1881 ई. तक आते–आते उत्तर प्रदेश के पड़ोसी प्रान्तों बिहार, मध्य प्रदेश में नागरी लिपि और हिन्दी प्रयोग की सरकारी आज्ञा जारी हो गई तो उत्तर प्रदेश में नागरी आंदोलन को बड़ा नैतिक प्रोत्साहन मिला।

प्रचार की दृष्टि से वर्ष 1874 ई. में मेरठ में 'नागरी प्रकाश' पत्रिका प्रकाशित हुई। वर्ष 1881 ई. में 'देवनागरी प्रचारक' तथा 1888 ई. में 'देवनागरी गजट' पत्र प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नागरी आंदोलन को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की और वे इसके प्रतीक और नेता माने जाने लगे। उन्होंने 1882 में शिक्षा आयोग के प्रश्न–पत्र का जवाब देते हुए कहा – "सभी सभ्य देश की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है, जहाँ न तो अदालती भाषा शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की।"

प्रताप नारायण मिश्र – पं. प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी–हिन्दू–हिन्दूस्तान का नारा लगाना शुरू कर दिया।

1893 ई. में अंग्रेज सरकार ने भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने का प्रश्न खड़ा कर दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स्थापना–1893 ई.) व मदन मोहन मालवीय – नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना वर्ष 1893 में नागरी प्रचार एवं हिन्दी भाषा के संवर्धन के लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना की गई। सर्वप्रथम इस सभा ने कचहरी में नागरी लिपि का प्रवेश कराना ही अपना मुख्य कर्तव्य निश्चित किया। सभा ने 'नागरी कैरेक्टर नामक एक पुस्तक अंग्रेजी में तैयार की, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला गया था।

मालवीय के नेतृत्व में 17 सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल द्वारा लेफ्टिनेंट गवर्नर एण्टोनी मैकडानल को याचिका देना (1898 ई.) – मालवीय ने एक स्वतंत्र पुस्तिका 'कोर्ट करैक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ–वेस्टर्न प्रोविन्सेज' (1897 ई.) लिखी, जिसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। वर्ष 1898 ई. में प्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर के काशी आने पर नागरी प्रचारिणी सभा का एक प्रभावशाली प्रतिनिधि मंडल मालवीय के नेतृत्व में उनसे मिला और हजारों हस्ताक्षरों से युक्त एक मेमोरियल उन्हें दिया। यह मालवीय जी का ही अथक प्रयास था, जिसके परिणामस्वरूप अदालतों में नागरी को प्रवेश मिल सका। इसीलिए अदालतों में नागरी के प्रवेश का श्रेय मालवीय जी को दिया जाता है।

गौरी दत्त – व्यक्तिगत रूप से मेरठ के गौरी दत्त को नागरी प्रचार के लिए की गई सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

देवनागरी के अंकों का विकास – देवनागरी के अंकों के बारे में विद्वानों में ज्यादा विवाद नहीं है। लिपि–चिन्हों का जैसे–जैसे विकास होता गया वैसे–वैसे उसके अंकों का भी विकास होता गया। इन अंकों की सर्वप्रथम उत्पत्ति भारत में ही हुई।

अंको की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित महत्त्वपूर्ण धारणायें इस प्रकार हैं – कुछ विद्वानों का विचार है कि अंकों का विकास रेखाओं से हुआ है क्योंकि आज भी कितने अनपढ़ लोग – ; ᷈ ; ।। आदि रेखायें खींचकर गणना किया करते हैं। पुरानी लिपि में ऐसे ही अंक मिलते हैं।

प्राचीन लिपि में शून्य के लिए कोई चिन्ह नहीं मिलता। देवनागरी में "0" का प्रयोग देखा जाता है। इस शून्य (0) के प्रचार से बड़ी सरलता आ गई है। ये नवीन अंक चिन्ह ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक विकसित हो गए थे। शून्य का विकास बहुत पीछे हुआ है। अंकों के विकास की संपूर्ण स्थिति निम्नलिखित चित्र के माध्यम से प्रस्तुत है –

१	(1)	५	(5)	९	(9)
२	(2)	६	(6)		
३	(3)	७	(7)		
४	(4)	८	(8)		

14.6 उपसंहार –

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि की उत्पत्ति का एक इतिहास रहा है। देवनागरी लिपि के नामकरण संबंधी विद्वान एक मत नहीं हैं परन्तु इसका विकास एवं व्युत्पत्ति ब्राह्मी वर्णाक्षरों से हुई और इसका प्रयोग 8वीं–9वीं शताब्दी से आरम्भ हुआ यह स्पष्ट है। देवनागरी लिपि विकसित लिपि मानी जाती है और अभी भी यह उत्तरोत्तर विकास कर रही है। इसमें समय–समय पर मानकीकरण भी होता रहता है।

14.7 कठिन शब्द

उद्‌गम

स्थानान्तरण

समादृत

प्रतिवेदन

अनभिज्ञ

14.8 अभ्यास प्रश्न

प्र.1 देवनागरी लिपि के नामकरण पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

प्र.2 देवनागरी लिपि की विकास–यात्रा को स्पष्ट कीजिए?

____

____

____

____

____

प्र.3 देवनागरी लिपि पर संक्षेप में लेख लिखिए?

____

____

____

____

____

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी भाषा, डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, उदयनारायण तिवारी
3. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी
4. हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा और लिपि, प्रतिभा नागपाल

B.A. HINDI **UNIT-V** **Lesson No. 15**

COURSE CODE: HI-301 **B.A. Sem-III**

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

15.0 रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

– देवनागरी लिपि की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

– देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता के आधार से अवगत होंगे।

15.2 प्रस्तावना

15.3 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

15.3.1 वर्णमाला की पूर्णता एवं सम्पन्नता

15.3.2 स्पष्टता

15.3.3 सरलता

15.3.4 लिपि में स्वर और व्यंजन की क्रमबद्धता

15.3.5 लेखन और मुद्रण में एकरूपता

15.3.6 उच्चारण और लेखन में एकरूपता

15.3.7 व्यावहारिक उपयोगिता

15.3.8 एक ध्वनि : एक सांकेतिक चिन्ह

15.3.9 एक सांकेतिक चिन्ह – एक ध्वनि

15.3.10 सांस्कृतिक सम्पन्नता

15.3.11 वर्ण के अनुरूप आकृति

15.3.12 सुन्दरता, सुडौलता तथा कलात्मकता

15.4 देवनागरी लिपि के दोष एवं त्रुटियाँ

15.5 सारांश/उपसंहार

15.6 कठिन शब्द

15.7 अभ्यास प्रश्न

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

15.2 प्रस्तावना –

देवनागरी भारत की प्रधान लिपि है। यह निर्विवाद है कि देवनागरी संसार की श्रेष्ठ लिपियों में से एक है। यह ध्वन्यात्मक लिपि है। हिन्दी और हिन्दी बोलियाँ ही नहीं, मराठी और नेपाली भी इसी लिपि में लिखी जाती हैं। हमारा संस्कृत साहित्य देवनागरी में मिलता है। बहुत से विद्वानों का यह मत है कि सब भारतीय भाषाओं में एक ही लिपि हो तो साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार और भावात्मक एकता का प्रसार हो सकता है। प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओ का साहित्य देवनागरी में ही लिखा जा रहा है। अधिकांश विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग का समर्थन किया है। संसार में प्रचलित तीन लिपियों रोमन, उर्दू तथा देवनागरी में देवनागरी लिपि अन्य दोनों से अधिक वैज्ञानिक है। साथ ही व्यावहारिकता तथा सांस्कृतिक सम्पन्नता की दृष्टि से भी यह लिपि हमारे अधिक अनुकूल पड़ती है। हिन्दी–मराठी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के लिए भी अन्य लिपियों से अधिक उपयुक्त मानी जा रही है।

15.3 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ –

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता तथा सांस्कृतिक सम्पन्नता की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं –

15.3.1 वर्णमाला की पूर्णता एवं सम्पन्नता – देवनागरी लिपि में 52 वर्ण हैं। इतने अधिक वर्णों की संख्या विश्व की किसी अन्य लिपि में नहीं है। रोमन लिपि में 26 वर्ण हैं, जिनमें 12 मूल स्वर तथा 14 व्यंजन हैं। अंग्रेजी में कुल स्वर ध्वनियाँ 21 हैं और उसको व्यक्त करने के लिए मात्र 12 ध्वनि चिह्न। ठीक यही स्थिति व्यंजनों की भी है। इसलिए अन्य भाषाओं को व्यक्त करने में यह लिपि अक्षम साबित होती है। हिन्दी के श, च, ड, द, थ के लिए रोमन लिपि में कोई ध्वनि चिह्न नहीं है। भारतीय हलन्त व्यंजन तो रोमन लिपि में व्यक्त ही नहीं किये जा सकते। इस तरह देवनागरी ही ऐसी लिपि है,जिमसें लगभग सभी भाषाओं की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए ध्वनि–चिह्न हैं। इस तरह से देवनागरी अपने आपमें पूर्ण एवं सम्पन्न लिपि है।

15.3.2 स्पष्टता – इस लिपि में स्पष्टता इतनी है कि उच्चारित ध्वनियाँ ही लिखी जाती है। रोमन की भाँति इसमें ऐसा नहीं है कि लिखा जाए कुछ और पढ़ा जाए कुछ। अंग्रेजी के अनेक शब्दों में आदि तथा मध्यवर्ती ध्वनियाँ

उच्चारित नहीं होतीं। जैसे knife, calf, calk, calm आदि। यह रोमन लिपि की अस्पष्टता का प्रमाण है। हिन्दी में प्रत्येक लिखी हुई ध्वनि का उच्चारण किया जाता है।

15.3.3 सरलता – रोमन लिपि की भाँति इस लिपि की वर्णमाला तीन तरह की नहीं है। इससे सीखने में सरलता होती है। अंग्रेज़ी में वाक्य का पहला अक्षर 'कैपिटल' में लिखना होता है। उसमें लिखने की वर्णमाला अलग है और पढ़ने की अलग। हिन्दी में यह कठिनाई नहीं है। रोमन लिपि जब जोड़ कर लिखी जाती है, तब उन शब्दों की वर्तनी (स्पेलिंग) समझना मुश्किल हो जाता है। देवनागरी लिपि में जोड़कर लिखे जाने पर भी इसे सरलता से समझा और पढ़ा जा सकता है।

15.3.4 लिपि में स्वर और व्यंजन की क्रमबद्धता – देवनागरी लिपि में एक वैज्ञानिक क्रमबद्धता दिखाई देती है। इसमें पहले ह्रस्व स्वर, दीर्घ स्वर, बाद में संयुक्त स्वर उसी प्रकार पहले असंयुक्त व्यंजन, बाद में संयुक्त व्यंजन इस तरह का क्रम है। व्यंजनों में भी अल्पप्राण के बाद उसी ध्वनि का महाप्राण रूप, सघोष–अघोष आदि का क्रम इसमें दिखाई देता है। इस तरह का कोई क्रम न तो रोमन लिपि में है और न उर्दू लिपि में।

15.3.5 लेखन और मुद्रण में एकरूपता – रोमन लिपि में लेखन और मुद्रण (लिखाई और छपाई) में अन्तर आ जाता है। अरबी–फारसी लिपि के भी हस्तलेख और मुद्रित रूप में भिन्नता है। देवनागरी में इस प्रकार की कोई भिन्नता नहीं। उसे जिस रूप में टंकित या मुद्रित किया जाता है, उसी रूप में हाथ में लिखा जाता है। इससे वर्णमाला से परिचित होने वाला छोटा बच्चा भी पुस्तकों के साथ ही हस्तलेख भी आसानी से पढ़ता है। रोमन लिपि के माध्यम से पढ़ने वाला बच्चा मात्र मुद्रित ही पढ़ सकेगा, हस्तलेख नहीं। डॉ. रामेश्वर दयाल अग्रवाल ने इसकी ओर संकेत करते हुए लिखा है – "अंग्रेज बच्चों की प्राथमिक शिक्षा जहाँ दो–ढाई वर्षों में पूरी होती है, वहाँ उसी स्तर का भारतीय विद्यार्थी देवनागरी के माध्यम से हिन्दी आदि भाषाएँ दो–ढाई मास में लिख–पढ़ लेता है। यह लिपि की विशेषता ही कही जायेगी।"

15.3.6 उच्चारण और लेखन में एकरूपता – देवनागरी लिपि में उच्चारण और लेखन में एकरूपता है, जो न तो रोमन लिपि में है और न उर्दू लिपि में। उदाहरण के लिए देवनागरी में लिखे कर्म, क्रम और करम शब्दों का उच्चारण और उर्दू लिपि में इन्हीं शब्दों के लिखने पर उच्चारण में अन्तर आ जाता है। उर्दू लिपि में संयुक्त अक्षर लिखना मुश्किल है। रोमन लिपि में तो स्थिति और भी पेचीदा है। लिखा जाता है पी यू टी (Put) उच्चारण होता है पुट। ध्वनि जिस रूप में लिखी जाती है, उसी रूप में उसका उच्चारण यहाँ नहीं होता है। उर्दू लिपि में भी यही हाल है। लिखा जाता है 'अलिफ बे' पढ़ा जाता है – अब। अतः कहा जा सकता है कि रोमन तथा उर्दू की तुलना में उच्चारण की दृष्टि से देवनागरी लिपि सर्वोत्तम है।

15.3.7 व्यावहारिक उपयोगिता – व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से विचार करें तो रोमन लिपि में टंकण, मुद्रण, दूरमुद्रण आदि की बहुविध यांत्रिक सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण बहुत से विद्वान इसका जोरदार समर्थन करते रहे हैं, परन्तु आज यही सभी सुविधाएँ देवनागरी में उपलब्ध हो रही हैं। अब देवनागरी का परिवर्द्धिता स्वरूप इस तरह का बना है कि संसार की किसी भी भाषा को इसके माध्यम से लिखा जा सकता है। टंकलेखन, इलैक्ट्रानिक, टंकलेखन, कम्प्यूटर, कम्प्यूटर मुद्रण, तार आदि में आज बड़ी सहजता तथा सफलता के साथ देवनागरी लिपि का

प्रयोग किया जा रहा है। अतः व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से देवनागरी लिपि अब अन्य किसी लिपि में विशेषकर रोमन लिपि से किसी भी अर्थ में कम नहीं है। एक समय था कि देवनागरी को यांत्रिक सुविधा की दृष्टि से अयोग्य माना जाता था, क्योंकि उसमें अधिक ध्वनि चिह्न हैं, मात्राओं को वर्ण के पहले, बाद में, ऊपर और नीचे तथा कहीं–कहीं वर्ण के पेट में लगाना पड़ता है। वस्तुतः व्यावहारिकता की दृष्टि से यह देवनागरी लिपि का गुण माना जाना चाहिए, क्योंकि मात्राओं के लिए यहाँ रोमन लिपि की भाँति इसमें अलग से ध्वनि चिह्न का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। इससे कम स्थान में शब्द लिखा जा सकता है। जैसे – 'सूर्य' के लिए रोमन में (Surya) पाँच ध्वनि चिह्न लिखने पड़ते हैं।

15.3.8 एक ध्वनि : एक सांकेतिक चिन्ह – देवनागरी लिपि में सभी स्वरों ह्रस्व और दीर्घ रूप के लिए अलग–अलग संकेत चिह्न हैं। सभी स्वरों की मात्राएँ निश्चित हैं। तुलनात्मक ढंग से उर्दू और रोमन लिपि में यह स्थिति नहीं है। जैसे उर्दू में 'स'न ध्वनि के लिए तीन वर्ण हैं – सीन, स्वाद और से, 'ज' के लिए चार वर्ण हैं – जाल, जे, ज्हे और ज्वाद, 'त' के लिए दो वर्ण हैं – ते और तोय, 'ह' के लिए तीन वर्ण हैं – छोटी हे, बड़ी हे, द्वि चश्मी हे। इससे कभी–कभी भ्रम हो जाने की सम्भावना होती है। अंग्रेजी में तो ध्वनि–चिह्नों की इतनी विभिन्नता है कि 'अ' ध्वनि को प्रकट करने के लिए लगभग ग्यारह–बारह सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार 'श' को व्यक्त करने के लिए चौदह चिह्न मिलते हैं। जैसे – sugar, shoe, issue, mansion, mission, nation, suspicion, ocean, nauseous, conscious, search, chaperson, schist, tuchsia, pshaw आदि। रोमन लिपि में हर ध्वनि के लिए दो ध्वनि चिह्न हैं; एक छोटा तथा दूसरा बड़ा; जैसे – a-A, b-B ... आदि। साथ ही यह जब जोड़कर लिखा जाए तो हरेक के लिपि चिह्न की शक्ल अलग बन जाती है।

15.3.9 एक सांकेतिक चिन्ह – एक ध्वनि – देवनागरी लिपि में एक सांकेतिक चिह्न से एक ही ध्वनि का बोध होता है। यह स्थिति रोमन लिपि में नहीं है। उदाहरण के लिए देवनागरी 'ख' और 'क' दो अलग–अलग ध्वनि तथा ध्वनि चिह्न हैं। रोमन लिपि में 'ख' के लिए अलग ध्वनि चिह्न नहीं मिलता। लिखकर 'kh' (ख) को लिखना होता है। देवनागरी में लगभग सभी ध्वनियों के लिए अलग ध्वनि चिह्न हैं, लेकिन रोमन लिपि में ध्वनियाँ अधिक हैं और लिपि चिह्न कम। उदाहरण के लिए 'त' और 'ट' के लिए रोमन में 'T' का ही प्रयोग करना पड़ता है। वैसे देवनागरी लिपि में भी कुछ ध्वनियों के लिए ध्वनि चिह्न नहीं थे, लेकिन अब उसमें सुधारकर उसे सभी भारतीय भाषाओं के लिए उपयुक्त बनाने का प्रयोग किया जा रहा है। जिन ध्वनियों के लिए देवनागरी में ध्वनि चिह्न नहीं हैं, उसके लिए चिह्न निर्धारित किये जा रहे हैं। जैसे अरबी–फारसी के ध्वनियों के लिए क़, ख़, ग, अंग्रेजी के लिए ॲ, आदि। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने देवनागरी लिपि को ऐसा संस्कारित किया है कि अब वह लगभग सभी भारतीय भाषा के लिए उपयुक्त बन गयी है।

15.3.10 सांस्कृतिक सम्पन्नता – इस समय प्रचलित भारत की लिपियों में यह सर्वाधिक प्राचीन है। सातवीं शताब्दी से ही इसके प्रयोग के प्रमाण विभिन्न शिलालेखों, सिक्कों और ताड़पत्रों आदि में मिलने लगते हैं। हज़ारों वर्ष प्राचीन वैदिक वाङ्मय, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, संस्कृत का विपुल साहित्य, साहित्यशास्त्र, प्राकृत तथा अपभ्रंश की असंख्य रचनाएँ और बौद्ध एवं जैन रचनाकारों का अपार साहित्य देवनागरी लिपि में प्राप्त है। यहाँ तक कि भारत के

असंख्य अहिन्दी–भाषी रचनाकारों की अन्यान्य भाषाओं में प्रस्तुत की गई रचनाएँ भी आज मूल पाठ और अर्थ भाष्य–व्याख्या सहित 'देवनागरी लिपि' में प्राप्त हैं। मराठी, नेपाली आदि भाषा के लिए भी यही लिपि प्रयुक्त होती है। दक्षिण भारत में जहाँ तेलगु, तमिल आदि लिपियाँ चलती रही वहाँ भी नागरी को पर्याप्त सम्मान प्राप्त है। देवनागरी की दक्षिणी शैली 'नन्दिनागरी' कहलाती है। आज मारीशस, फिजी, आदि अनेक देशों में बसे हिन्दी भाषियों की यही लिपि है। यूरोप, अमेरिका, चीन और जापान आदि देशों में जहाँ–जहाँ संस्कृत का पठन–पाठन होता है, वहाँ के संस्कृतज्ञों में भी इसी लिपि का आदर है। अतः कहा जा सकता है कि सार्वदेशिक बनती यह लिपि सांस्कृतिक सम्पन्नता की विशेषता संजोए हुए हैं।

15.3.11 वर्ण के अनुरूप आकृति – हिन्दी में 'उ' ओष्ठ्य वर्ण है। इसका उच्चारण ओंठ की सहायता से होता है। इसलिए इसकी बनावट भी ओंठ जैसी है। यद्यपि सामान्य रूप से यह बात सभी वर्णों पर लागू नहीं होती, किन्तु यह बात कुछ अंशों में सच है। श्री दा. सतवेलेकर के एक लेख का उद्धरण देते हुए इस सन्दर्भ में डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री ने इस सन्दर्भ में लिखा है – "कहा जाता है कि एक पाश्चात्य भाषा शास्त्री ने देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का पता लगाने के लिए देवनागरी अक्षरों के मिट्टी के प्रतिरूप तैयार किए। जब उसने उसमें हवा फूँकी तो वह यह जान कर आश्चर्यचकित रह गया कि 'अ' ध्वनि 'अ' प्रतिरूप में से आई और 'आ' की ध्वनि 'आ' प्रतिरूप में से निर्गत हुई। इसी प्रकार अन्य अक्षर–प्रतिरूपों का निर्माण हुआ है।"

15.3.12 सुन्दरता, सुडौलता तथा कलात्मकता – देवनागरी लिपि लिखावट में सुन्दरता, सुडौलता तथा कलात्मकता लिए हुए है। वर्णों की बनावट में 'पाई' की पद्धति इसे सरलता से सीखने में सहायता देती है। अधिकांश वर्ण गोलाई लिए हुए हैं जिन्हें कलात्मक सांचे में ढाल कर प्रस्तुत करना सुगम है।

15.4 देवनागरी लिपि के दोष एवं त्रुटियाँ –

यद्यपि देवनागरी लिपि संसार की अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक पूर्ण, स्पष्ट तथा वैज्ञानिक है, फिर भी अभी तक इसमें कई त्रुटियाँ दिखलाई पड़ती हैं, जो इस लिपि के दोष कहलाये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं –

1. **अक्षरात्मक लिपि** – रोमन लिपि के समर्थकों के अनुसार देवनागरी, अक्षरात्मक लिपि होने से इसके प्रत्येक सांकेतिक चिह्न में स्वर और व्यंजन मिले हुए रहते हैं। अतएव संयुक्त व्यंजनों को लिखने के लिए कभी–कभी व्यंजनों का आधा रूप लिखना पड़ता है, जैसे कि विद्या, खाद्य, संयुक्त, धर्म आदि शब्दों के लिखने में व्यंजन का रूप बदल जाता है। इन शब्दों में न तो 'द' अपने मूल रूप में है और न 'क्त' एवं 'र्' ही। डॉ. चटर्जी के अनुसार वैज्ञानिक लिपि की दो विशेषताएँ हैं – उसमें शुद्ध लिखा जाए और उसमें ध्वनि–विश्लेषण सरलता से हो सके। देवनागरी में शुद्ध तो लिखा जाता है, किन्तु वह अर्द्ध–अक्षरात्मक है, इसलिए ध्वनि–विश्लेषण सरलता से नहीं हो सकता; जैसे –देवनागरी में 'धर्म' में दो अक्षर 'ध' और 'र्म' हैं। इनमें तो स्वर वर्ण स्पष्ट है, न धातु और प्रत्यय। इसके विपरीत रोमन लिपि 'DHARMA' में दो स्वर भी स्पष्ट हैं और साथ ही धातु 'धर्' और प्रत्यय 'म' भी।

2. **लम्बी वर्णमाला** – देवनागरी के अक्षरों की संख्या अधिक है। स्वरों की मात्राओं, आधे अक्षरों, द्वित्व अक्षरों

तथा विभिन्न अक्षरों के नीचे अथवा ऊपर लगाने वाले चिह्नों की संख्या इससे पृथक् है। इतनी बड़ी वर्णमाला को स्मरण रखना, समझना और ठीक–ठीक प्रयोग करना छात्र के लिए तथा मुद्रण और टंकण के लिए भी असुविधाजनक है।

3. **संयुक्त ध्वनि–चिह्न : अवैज्ञानिक –** वैज्ञानिक लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही ध्वनि–चिह्न होना चाहिए। देवनागरी लिपि में श्र, क्ष,त्र, ज़ आदि ऐसे ध्वनि चिह्न हैं, जिनमें दो ध्वनियों का संयोग है।

4. **लेखन और उच्चारण में भेद –** देवनागरी की कुछ ध्वनि में लेखन–उच्चारण में अन्तर आता है। जैसे – 'कि' इसमें 'इ' का उच्चारण 'क' के बाद होता है। लेकिन 'इ' की मात्रा 'क' के पहले लगायी जाती है। यही स्थिति 'र्' के संयुक्त अखर की है। जैसे – 'धर्म'। इसमें 'र' की उच्चारण 'म' के पहले होता है, लेकिन 'र' का ध्वनि चिह्न 'म' के ऊपर लगाया जाता है। कहीं–कहीं उच्चारण जिस ध्वनि का आधा हो उसे पूर्ण रूप में लिखा जाता और उच्चारण पूर्ण हो उसका अर्द्ध–ध्वनि चिह्न; जैसे – 'द्वन्द्व'। इसमें 'द्' का उच्चारण आधा और 'व' का उच्चारण पूरा हो जाता है, जबकि ठीक इसके विपरीत लिखा जाता है। (इस दोष के निराकरण के लिए खड़ी पाई रहित व्यंजनों के साथ हलन्त् लगाकर संयुक्त अक्षर लिखा जाने लगा है; जैसे – द्वंद्व।) इस सन्दर्भ में 'ऋ' ध्वनि पर भी विचार किया जाता है। तत्सम शब्दों में इसे लिखा 'स्वर' के रूप में जाता है लेकिन उच्चारण व्यंजन 'रि' के रूप में होता है।

5. **अनावश्यक ध्वनि–चिह्न –** हिन्दी में कुछ ध्वनियों का उच्चारण ही नहीं होता, फिर भी उसके लिए ध्वनि चिन्ह उसमें हैं; जैसे – ङ्, ञ, ष, ॠ, ज्ञ आदि। अर्द्ध 'र' के लिए (क्रम) ्र, (कर्म) र्, (गृह) ृ तीन चिन्ह हैं।

6. **ध्वनि–चिन्हहीन ध्वनियाँ –** देवनागरी में जहाँ कुछ ध्वनियों के लिए दो–दो ध्वनि चिन्ह हैं, तो दूसरी ओर 'म्ह', 'ल्ह', 'न्ह' अब हिन्दी में संयुक्त–व्यंजन न होकर मूल महाप्राण व्यंजन हैं, परन्तु उनके लिए कोई स्वतन्त्र ध्वनि–चिन्ह नहीं है।

7. **अस्पष्टता –** देवनागरी के कुछ ध्वनि–चिन्हों की आकृतियाँ ऐसी हैं, जिससे भ्रम हो सकता है; जैसे – घ–ध, म–भ, शिरो रेखा के न होने पर इनमें भेद करना मुश्किल हो जाता है।

15.5 उपसंहार –

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि देवनागरी लिपि की विशेषताएँ इसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध करती हैं। इस लिपि को अन्य प्रचलित लिपियों से अधिक वैज्ञानिक माना गया है। जहाँ तक इस लिपि में दोष और त्रुटियों की बात होती है तो समय–समय पर उसमें सुधार किए जाते रहे हैं। इसका मानकीकरण निरन्तर होता रहेगा।

15.6 कठिन शब्द

निर्विवाद

क्रमबद्धता

सर्वोत्तम

अपभ्रंश

मुद्रण

उच्चारण

15.7 अभ्यास प्रश्न

प्र.1 देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है, सिद्ध कीजिए?

____

____

____

____

____

प्र.2 देवनागरी लिपि की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

____

____

____

____

____

15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाषा विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. भाषा शास्त्र की रूपरेखा, उदयनारायण तिवारी
3. हिन्दी भाषा की संरचना, डॉ. भोलानाथ तिवारी
4. हिन्दी भाषा का इतिहास, धीरेन्द्र वर्मा
5. प्रयोजनमूलक हिन्दी, माधव सोनटक्के
6. हिन्दी भाषा इतिहास और स्वरूप, डॉ. राजमणि शर्मा